घेरण्ड संहिता

भाषानुवाद सहिता

भाष्यकार:

ब्रह्मलीन राष्ट्रगुरू श्री १००८ श्री स्वामीजी महाराज

श्री पीताम्बरा पीठ

दतिया (म.प्र.)

अनन्त विभूषित श्री स्वामी जी महाराज, दतिया (म.प्र.)



ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्, द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतम्, भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरु तं नमामि।।

प्रकाशकीय

श्री पीताम्बरा - पीठ देश की न केवल एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक संस्था है जो गत 30 वर्षों से निर्बल और निरीह मानवता को आध्यात्मिक साधनों से सशक्त बनाकर कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त करती रही है; अपितु वैदिक साहित्य एवं संस्कृति की प्रतिनिधि है,जिसका उद्देश्य पीठ के संस्थापक पूज्यपाद श्री 1008 श्री स्वामीजी महाराज की संरक्षता में संस्कृताध्यापन एवं संस्कृत-ग्रन्थों के प्रकाशन द्वारा, संस्कृत प्रचार एवं प्रसार करके संस्कृत एवं संस्कृति का संवर्धन करना है।

पीठ द्वारा संपादित अन्य महत्वपूर्ण कार्यों के समान प्रकाशन कार्य भी विशेष महत्व का है। प्राचीन साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन की पूज्यपाद की इच्छा सदैव रही है; जिसके फलस्वरूप लगभग 25 वर्ष पूर्व से ग्रन्थ-प्रणयन एवं प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न होता आ रहा है। अद्यावधि श्री पीताम्बरा - पीठ द्वारा अनेक महत्वपूर्ण एवं मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकाशन माला में तन्त्र, उपनिषद, दर्शन, योग आदि विविध विषयों की श्रेष्ठ मणियाँ गुम्फित हो चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन श्री पीताम्बरा - संस्कृत परिषद् की ओर से किया जा रहा है। श्री पीताम्बरा - संस्कृत - परिषद्, पीठ की एक महत्वपूर्ण संस्था है। इसकी स्थापना पूज्य श्री महाराज जी की प्रेरणा से संस्कृत के प्रचार एवं प्रसार के लिए दिनांक 25-5-60 को की गयी थी। तभी से यह संस्था संस्कृत-सेवा में सम्यक् रूप से संलग्न है।

प्रस्तुत योग-विषयक पुस्तक श्री घेरण्ड मुनि द्वारा विरचित 'घेरण्ड संहिता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें श्री घेरण्ड मुनि ने अपने शिष्य चण्ड कापालि को योग का अनुशासन किया है। अन्य अनेक ऋषि मुनियों के समान श्री घेरण्ड मुनि का भी परिचय उपलब्ध नहीं है। उनके शिष्य कापालि का नाम अवश्य हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ ''हठयोग-प्रदीपिका'' में योग-प्रवर्तक आचार्यों की कोटि में आया है। घेरण्ड मुनि विरचित योग के इस ग्रन्थ में तांत्रिक-पद्धति का अनुसरण किया गया है। योग शास्त्र का यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुबोध भाषा में अभी तक प्रकाशित नहीं था। सर्वसाधारण के उपयोग के लिए पूज्यपाद् ने हिन्दी-टीका का प्रणयन किया

है, जिसमें यथास्थान आगम-ग्रन्थों के उद्धरणों से योग-शास्त्र के अनेक दुर्बोध स्थलों का समुचित -ज्ञान अनायास ही हो जाता है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का समस्त व्यय-भार बम्बई निवासी श्रीयुत सेठ बालकृष्णदास पदमचन्द ने सहर्ष वहन किया हैं, तदर्थ उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट किया गया है।

पुस्तक को प्रकाशन की दृष्टि से पूर्ण सुन्दर बनाने में श्रीराम प्रेस झांसी के अधिष्ठाता श्री द्वारिकेश मिश्र ने जो परिश्रम पूर्वक कर्तव्य-निर्वाह किया है; तदर्थ वह भी समुचित धन्यवाद के पात्र हैं।

दतिया (म.प्र.)

मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ

द्वितीय संस्करण

परम पूज्य आचार्य चरणों की कृपा से योग के बहुचर्चित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड संहिता के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन से परिषद् प्रसन्नता का अनुभव कर रही है।

भारतीय समस्त साधनाएं योग साधना से ही अनुप्राणित हैं। तन्त्र योग मिल कर ही साधना को सर्वांङ्गीण परिपूर्ण बनाते हैं। इस ग्रन्थ में दोनों का मिलन है। यह ग्रन्थ गुरू तुल्य ही पथ प्रदर्शक है। इसका सर्व प्रथम प्रकाशन यहीं से हुआ। द्वितीय संस्करण से उपादेयता स्पष्ट ही है।

समस्त व्यय भार श्री सुरेन्द्रदेव जी गौड़ एवं श्रीमती सावित्री देवी गौड़ ने सहर्ष वहन किया है। उन्हें आभार सहित शुभ कामनाएं।

साधकों की साधना समुन्नत हो ऐसी आशा है।

ब्रजनन्दन शास्त्री साहित्याचार्य
मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म.प्र.)

सं. 2034
दीपमालिका

तृतीय संस्करण

प्रकाशकीय तृतीय संस्करण प्रस्तुत ग्रन्थ घेरण्ड संहिता यौगिक क्रियाओं का संग्रह है। आशा है जिज्ञासु विज्ञ पाठक इससे लाभ उठायेंगे तो संस्कृत परिषद कृत कृत्य होगी।

ॐ नारायन द्विवेदयः
शास्त्री
श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म.प्र.)

सं. 2045
गंगा दशहरा

प्रकाशकीय

(चतुर्थ संस्करण)

ब्रह्मलीन अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद आचार्य चरणों के शुभाशीर्वाद से योग के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड संहिता के चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन से पीठ परिषद प्रसन्नता का अनुभव कर रही है।

घेरण्ड मुनि विरचित योग के इस ग्रन्थ में तांत्रिक, यौगिक पद्धति का अनुसरण किया गया है। सर्वसाधारण के उपयोग के लिये पूज्यपाद जी ने हिन्दी का प्रणयन किया है जिसमें यथा स्थान तन्त्र ग्रन्थों के उद्धरणों से योग शास्त्र के अनेक दुर्बोध स्थलों का समुचित ज्ञान अनायास ही हो जाता है।

साधकों की साधना समुन्नत हो, ऐसी आशा है।

श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म.प्र.)

गुरूपूर्णिमा 2060
रविवार, 13 जुलाई, 2003

भूमिका

भारतवर्ष में योग-विद्या का महत्व बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। आर्य-जाति के इतिहास में, प्रधान रूप में योग का विषय-विवेचन किया गया है। मनुष्य-जीवन के अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष के निरूपण में सर्वत्र ही योग की प्रधानता है। योग का प्रयोग लौकिक एवं अलौकिक भेद से दो प्रकार का माना गया है। लौकिक कार्यों की सिद्धि भी बिना मन के अवधान के नहीं होती। अलौकिक -योग के विषय में कहा गया है- ''यदयं परमोधर्मा यद् योगेनात्म दर्शनम्''- अर्थात् योग से आत्म -दर्शन करना परम धर्म है। वेद से लेकर पुराण, इतिहास आदि सभी ग्रन्थों में योग की श्रेष्ठता बताई गयी है। ऋषियों ने वेद-मंत्रों का साक्षात्कार योग-द्वारा ही किया था। यह सारा विश्व योग द्वारा ही बना हुआ है। परमाणु, प्रकृति, माया आदि तत्त्वों के योग द्वारा ही विश्व रचना हुई है; इसलिये योग का महत्व सर्वोपरि है।

उपनिषदों में इसका विषय विस्तृत रूप से बताया गया है। चार प्रकार के योगों का वर्णन योग के चार सम्प्रदायों से किया गया है। जिन्हें राज, लय, हठ एवं मंत्र के नाम से कहा जाता है। महर्षि पतञ्जलि का योग-दर्शन राजयोग के अन्तर्गत आता है। इस मत में चित्त-वृत्ति के निरोध को ही योग माना गया है। उपासना-मार्ग भी राजयोग का ही रूपान्तर है, जिसे ईश्वर प्रणिधानाद्वा सूत्र में ईश्वर प्रणिधान पद से बताया गया है। वर्तमान काल में प्रचलित शाक्त, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय 'ईश्वर प्रणिधान' नाम के योग से गृहीत होती है। इसीलिये भाष्य-कर्ता श्रीव्यासजी ने कहा

है-''प्रणिधानाद् भक्ति विशेषाद् आवर्जित ईश्वरस्तमनु गृण्हाति, अभिध्यान मात्रेण तद् अभिध्यानादपि योगिन आसन्न समाधिलाभ: फलंच भवति।'' (योग.स.पा.सू.23) भोज ने भी इसकी व्याख्या इसी प्रकार की है-''प्रणिधानं भक्ति विशेष: विशिष्टमुपासनम्'' -क्लेशादि से रहित ईश्वर-तत्व को अनेक नामों से शास्त्रों में कहा गया है। इसलिये उसको कोई एक संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसलिये व्यास-भाष्य में कहा गया है-''तस्य संज्ञादि विशेषत्रति - पत्तिरागमत: पर्यन्वेष्या'' (व्या.भा;सा.पा.सू.25)। इसीलिये शिव, विष्णु, महाशक्ति आदि नाम तथा इनके नामों से पुराणादि की रचना करके तत्तद्भावना भावति-भक्तियोग की प्रवृत्ति, महर्षि व्यास ने ही की है।

हठयोग में 'ह' एवं 'ठ' के योग हठयोग बताया गया है। इड़ा -पिंगला नाड़ियों में प्रवाहित 'ह' एवं 'ठ' को चन्द्र एवं सूर्य के नाम से कहा जाता है, इनका ऐक्य ही हठयोग कहा जाता है। इड़ा-पिंगला के प्रवाह में मन वहिर्गति वाला रहता है। हठाभ्यास के द्वारा दोनों का ऐक्य सम्पादन करना इस योग का लक्ष्य है। जिस योग के विषय में लिखा जा रहा है, वह हठ योग के अन्तर्गत आता है। दोनों 'ह' एवं 'ठ' के ऐक्य होने पर आधार चक्र में स्थित कुण्डलिनीशक्ति का उद्बोध होकर प्राणापान की एकता द्वारा नाद-बिन्दु-कला तक षड़ाधार चक्रों का भेदन करके योगी परमतत्व का साक्षात्कार करता है। शरीर, मन इन्द्रियादि में अनेक प्रकार की मलिनता, अनेक जन्म के कर्म-जन्य संस्कारों से रहती है। बिना उसके शोधन के यह योग संभव नहीं है। इसीलिये हठयोग की क्रियाओं का उपदेश दिया गया है।

हठयोग के कई ग्रन्थ हैं, जिनमें यह विषय बताया गया है- 'हठयोग-प्रदीपिका', गोरक्ष पद्धति', शिव संहिता' आदि। हठयोग की क्रियाओं का सबसे अधिक विवरण प्रकृत 'घेरण्ड संहिता' में बताया गया है। षट्कर्म के प्रकार, आसन, मुद्रा, प्राणायाम के भेदों का ऐसा निरूपण किसी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। 'घेरण्ड संहिता' तान्त्रिक साधना के मत का ग्रन्थ है। तान्त्रिक मत से किस प्रकार समाधि -लाभ होता है, इसे ही लक्ष्य करके इसमें बताया है, क्योंकि तान्त्रिकों का योग सर्वोपरि एवं सभी प्रकार के योगों का समन्वय है। इसके षष्ठोपदेश में स्थूल-सूक्ष्म

गुरू ध्यान का प्रकार जो दिया है, वह तान्त्रिकों का है। 'पातञ्जल-दर्शन' में लय -योग एवं कुण्डलिनी -योग का निरूपण नहीं है। कुण्डलिनी-योग तान्त्रिकों की प्रधान साधना है, जिसे इस ग्रन्थ में सुन्दर रीति से बताया गया है। 'पातञ्जलि-दर्शन' में जन्मौषधि मन्त्र तप: समाधिजा: सिद्धयं सूत्र में मन्त्र से भी सिद्धि मानी गयो है। भाष्यकार ने बहुत स्थानों पर मन्त्र-सिद्धि का उल्लेख किया है। 'तस्य वाचक: प्रणव: तज्जपस्तदर्थ भावनम्' से सूत्रकार का मत मन्त्र के विषय में स्पष्ट हो जाता है। 'घेरण्ड संहिता' में आज्ञाचक्र में प्रणव का ध्यान अजपाजप एव तत्वों के मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। गुरू-ध्यान में सभी टीकाओं में तथा मूल में द्वादशाक्षर गुरूमंत्र का ग्रहण किया गया है। प्राणायाम की साधना मुख्य होने से यह संहिता हठयोग के अन्तर्गत आती है। अन्त में हठयोग भी राजयोग में ही पर्यवसन्न है तथापि 'पातञ्जलि-योग-दर्शन' से इस संहिता का राजयोग भिन्न है। पातञ्जलि मत द्वैतवादी है एवं यह अद्वैतवादी है। जीव की सत्ता ब्रह्म सत्ता से सर्वथा भिन्न नहीं है। 'सोऽहम्' मंत्र के अनुसंधान से जीवब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। यह भी सिद्धान्त तान्त्रिकों का ही है। इसे ही श्री गोरक्षनाथ ने 'योगबीज' एवं 'महार्थमञ्जरी' ग्रन्थों में स्वीकार किया है। कश्मीर के 'शैव-दर्शन' में भी यह सिद्धान्त (अद्वैत) माना गया है। इस ग्रन्थ में सात उपदेशों द्वारा सभी बातें कह दी गयी हैं। पहले उपदेश में महर्षि घरेण्ड ने 'चण्डकापालि' को षट्कर्म का उपदेश दिया है। दूसरे में आसन और उसके भिन्न-भिन्न प्रकार का विशद निरूपण किया है। तीसरे में मुद्रा का स्वरूप, लक्षण एवं उपयोग बताया गया है। चौथे में प्रत्याहार का विषय है। पाँचवे में स्थान, काल, मिताहार और नाड़ी -शुद्धि के पश्चात् प्राणायाम की विधि बताइ गयी है। छठे में ध्यान करने की रीति एवं प्रकार बताये गये हैं। सातवें में समाधि -योग तथा उसके भेद, ध्यान, नाद, रसानन्द, लय-सिद्धियोग एवं राजयोग के भेद द्वारा बताये गये हैं।

इस प्रकार 350 श्लोकों वाले इस छोटे से ग्रन्थ में सभी योगों का स्वरूप बता दिया गया है। इस ग्रन्थ की प्रतिपादन-शैली सरल, सुबोध एवं साधक के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस पर अनेक टीकाएं हुई हैं। पण्डित रामस्वरूप जी की हिन्दी टीका सुन्दर एवं प्रामाणिक है। एक इंगलिश टीका 'अडियार थियोसोफिकल

सोसायटी' से निकली है; जो कि अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के लिए उपयोगी है। इन अनेक टीकाओं का विचार करके संक्षेप में यह टीका तान्त्रिक उद्धरणों के साथ लिखी गयी है। उद्धरण प्राय: वही हैं, जिन्हें पं. रामस्वरूप जी ने भी लिया है। केवल अनुपयोगी विस्तार छोड़ दिया गया है।

आशा है, इस टीका द्वारा साधकों को अपनी साधना में सहायता मिलेगी।

जैन-धर्म में भी योगाभ्यास माना जाता है। आचार्य हेमचन्द्र सूरी ने अपने योगशास्त्र नामक ग्रन्थ के पञ्चमप्रकाश में प्राणायामयोग का क्रम दिया है, तथापि घेरण्ड संहिता में बतायी बातों से बहुत ही न्यून हैं। इस योग शास्त्र से यम, नियम, ध्यान, समाधि का ही विशेष विवरण किया गया है। पंचतत्वों की धारणा का निर्देश भी किया गया है। जैन मत में नाभसी धारणा नहीं मानी गयी है। स्वरोदय का विषय भी इस योग में दिया गया है। नाड़ी-शुद्धि, बिन्दु-ज्ञान आदि बताये गये हैं। पीछे से मन्त्र योग पर भी निर्देश किया गया है। महात्मा गौतम बुद्ध ने यद्यपि हठयोग पर अरूचि बतायी है, तथापि प्रसिद्ध बौद्ध के योग ग्रन्थ - 'विसुद्धि मग्ग' आन-पान स्मृति नाम के अभ्यास में हठयोग लिया गया है। जैन बौद्ध -योग का अनेक स्थानों पर साम्य है। आसनों का वर्णन हेमचन्द्र सूरी ने अपने ग्रन्थ के चौथे प्रकाश में दिया है; हठयोग प्रदीपिका में हठयोग की परम्परा में बुद्ध लिए गये हैं।

जैन-बुद्ध योग में मुद्राओं का स्वरूप कहीं भी नहीं बताया है। यद्यपि हठयोग का साधन इस समय लुप्त-प्राय है। क्योंकि इसकी क्रियाएं बहुत कठिन हैं। इनका ठीक-ठीक परिचय न हो तो साधन करने पर हानि की ही सम्भावना है; तथापि योग के सर्वाङ्गी स्वरूप का परिचय इसी से होता है। इसीलिए इस पर यह टीका लिखी गयी है। इसकी शुद्ध कापी करने का श्रम भी जगदीश गुप्त सुहाना एवं पं. श्रीराम तिवारी ने किया है। अत: ये दोनों सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं। इति।

दतिया,
चैत्र शुक्ल प्रतिपदा
संवत् 2021

राष्ट्रगुरू
श्री १००८ श्री स्वामीजी महाराज



योग माहात्म्यम्

卐 卐 卐

स धा नो योग आभुवत्
स राये स पुरंध्याम्
गमद् वाजेभिरा स नः।

– ऋग्वेद 1-5-3

卐 卐

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन

– श्रीमद्भगवद्गीता

卐 卐

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्वं
दीपोपमेनेह युक्त प्रपश्येत्
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः

– श्वेताश्वतर

अनुक्रमणिका

प्रथमोपदेश:

वस्तिप्रकरणम्

द्वितीयोपदेशः

आसनप्रकरणम्

तृतीयोपदेशः

मुद्राकथनम्

चतुर्थोपदेशः

प्रत्याहारः

पञ्चमोपदेशः

प्राणायामः

षष्ठोपदेश:
ध्यानयोग:

सप्तमोपदेश:
समाधियोग:


ओं


हं


यं


रं


वं

ॐ तत्सत्

घेरण्ड - संहिता

भाषानुवाद - सहिता

卐 卐

प्रथमोपदेशः

[1]आदीश्वराय प्रणमामि तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विराजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहणीव ।१।

एकदा चण्डकापालिर्गत्वाघेरण्डकुट्टिमम्।
प्रणम्य विनयाद्भक्त्या घेरण्डं परिपृच्छति ॥१॥

भावार्थ - एक समय, योगाभ्यास करने की इच्छा वाले साधक चण्डकापालि नामक अधिकारी शिष्य ने श्रीघेरण्ड मुनि की कुटी पर जाकर नम्रता पूर्वक भक्ति से उन्हें प्रणाम करके योग - विषयों को पूछा ।1।

---

1. यह श्लोक कई पुस्तकों में अधिक है।

चण्डकापालिरूवाच

घटस्थयोगं योगेश तत्त्वज्ञानस्यकारणम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगेश्वर वद प्रभो॥२॥

भावार्थ - हे योगेश! तत्वज्ञान का कारण घटस्थयोग है, इस समय उसे ही मैं जानना चाहता हूँ। हे प्रभो, हे योगेश्वर, उसे कृपापूर्वक आप मुझसे कहें ।2।

घेरण्ड उवाच

साधुसाधुमहाबाहो यस्मात्त्वं परिपृच्छसि।
कथयामि च ते वत्स सावधानोऽवधारय ॥३॥

भावार्थ - हे महाबाहो चण्ड, मैं तुम्हारे इस प्रश्न के लिए अनेक साधुवाद देता हूँ। हे प्रिय! इस विषय को तुम सुनना चाहते हो, उसे मैं कहता हूँ; सावधानी पूर्वक सुनो ।3।

नास्तिमायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्तिज्ञानात्परोबन्धुर्नाहङ्कारात्परोरिपुः ॥४॥

भावार्थ - माया के बराबर कोई पाप नहीं हैं, ज्ञान के समान कोई बन्धु नहीं है। अहंकार के तुल्य कोई बैर नहीं हैं, और योग के समान कोई अन्य बल नहीं है। ॥4॥

1- योगशास्त्र में कहा है 'प्राणापाननादबिन्दु जीवात्मपरमात्मनोः । मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद् वै घट उच्यते'। अर्थात् प्राण, अपान, नाद, बिन्दु जीव और परमात्मा के मिलन से जो घटता (बनता) है, इसलिए इसे घट या शरीर कहते हैं। इन घटस्थ (शरीरस्थ) योगों का वर्णन घटस्थयोग कहलाता है।

अभ्यासात् कादिवर्णानां यथाशास्त्राणि बोधयेत्।
तथायोगंसमासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ॥५॥

भावार्थ - जैसे ककार आदि वर्णों का क्रम से अभ्यास करने से समस्त शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है; उसी प्रकार योगाभ्यास करने से तत्त्वज्ञान हो जाता है। यह योगशास्त्र की महत्वपूर्ण सूचना है। ॥5॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते प्राणिनांघटः।
घटादुत्पद्यतेकर्म घटीयन्त्रं यथाभवेत् ॥६॥
ऊर्ध्वाधोभ्रमतेयद्वत् घटीयन्त्रं गवां वशात्।
तद्वत्कर्मवशाज्जीवो भ्रमतेजन्ममृत्युभिः॥७॥

भावार्थ - पुण्य-पाप के कार्यो से प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं, शरीरों से कर्म का आविर्भाव होता है, तदनन्तर कर्म से शरीर उत्पन्न होता है। इस प्रकार जैसे सूर्य की किरणों से घटीयन्त्र की सुइयाँ ऊपर नीचे फिरा करती हैं, उसी प्रकार प्राणी भी इस संसार-चक्र में घूम रहा है; अर्थात् जन्म-मरण का क्रम इसी प्रकार अनन्तकाल तक प्रवृत्त रहता है। अथवा बैलों की गति से रहेंट जैसे ऊपर-नीचे चक्कर लगाया करता है; ऐसे ही जीव घूमा करता है। घड़ी तथा रहेंट - इन दोनों उपमानों से अर्थ संगत होता है। ॥6,7॥

आमकुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणः सदाघटः।
योगानलेनसंदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥८॥

भावार्थ - जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े में जल भरने से घड़ा गल कर नष्ट हो जाता है। उसी को पका कर जल भरने से फिर नहीं गलता तथा जल भी नहीं निकलता; इसी तरह जीव का शरीर प्रतिदिन क्षीण हो रहा है। कच्चे घड़े की तथा शरीर की समानता है। शरीर का पक्कापन योगाग्नि द्वारा ही होता है। इसीलिए शरीर को दृढ़ करने के निमित्त योगाभ्यास करना चाहिए। ॥8॥

सप्तसाधनम्

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।
प्रत्यक्षंच विनिर्लिप्तं घटस्थंसप्तसाधनम् ॥९॥

भावार्थ - शरीर की शुद्धि के लिए सर्वप्रथम इन सात साधनों को करना चाहिए - शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्ति। यही सात साधन कहे गये हैं ।9।

सप्तसाधन लक्षणम्

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेनभवेद् दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ।१०।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना च निर्लिप्तं मुक्तिरेव न संशयः।११।

भावार्थ- षटकर्म द्वारा शोधन, आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से लाघव, ध्यान से ध्येय पदार्थ का प्रत्यक्ष दर्शन, तथा समाधि द्वारा निर्लिप्त-आसक्तिराहित्य होता है। इस क्रम से अभ्यास करने से अन्त में निश्चित रूप से मोक्ष-प्राप्ति होती है ।10,11।

दत्तात्रेय - संहिता में कहा गया है-

'यमश्चनियमश्चैव आसनं च ततः परम्।
प्राणायामश्चतुर्थः स्यात् प्रत्याहारश्चपञ्चमः॥
षष्ठीतु धारणाप्रोक्ताध्यानं सप्तममुच्यते।
समाधिरष्टमः प्रोक्तः सर्वपुण्यफलप्रदः॥
एवमष्टाङ्ग योगं च याज्ञवल्क्यादयोविदुः।'

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि - ये आठों योगाङ्ग सभी पुण्यफलों को देने वाले हैं। इनके ज्ञाता याज्ञवल्क्यादि महर्षि

ऐसा ही कहते हैं। महर्षि पतञ्जलि का भी कथन है-

'यमनियमआसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावाङ्गानि'

निरुत्तरतन्त्र में भी कहा है-

'आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्॥'

इस मत में यम-नियम को योगाङ्ग में नहीं माना है। आदियामल में ध्यान दो प्रकार का है-

'ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविवेकतः।
स्थूलं मन्त्रमयंविद्धि सूक्ष्मं तु मन्त्रवर्जितम्॥'

अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म भेद से ध्यान दो प्रकार का है। मंत्रजप के साथ स्थूल तथा जप-रहित को सूक्ष्म कहते है। निरूत्तरतन्त्र में प्राणायाम से लेकर समाधि-पर्यन्त योगाङ्गों का अनुष्ठान इस प्रकार बताया गया हैं-

'प्राणायामो द्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
प्रत्याहारोद्विषट्केन जायते धारणा शुभा॥
धारणाद्वादशप्रोक्तं ध्यानं ध्यानविशारदैः।
ध्यानं द्वादशकैरेवसमाधिरभिधीयते॥
यत्समाधौपरंज्योतिरन्तरं विश्वतोमुखम्।'

अर्थात् बारह प्राणायाम से प्रत्याहार की सिद्धि होती है, बारह प्रत्याहार से धारणा होती है, बारह धारणा से ध्यान और बारह ध्यान से समाधि पूर्ण होती है। समाधि-साधना होने पर हृदय के अन्दर परम ज्योति प्रकट होती है। आदियामल में कहा है-

'प्राणायामस्त्रिधा चेति बहुधा प्रथमं श्रृणु।
आसने प्राणसंयामे न शक्ताः सुकुमारकाः॥
महापुण्य प्रभावेण शक्यते तु महात्मनाम्।
ईडांशशि प्रभां ध्यात्वामन्देन्दुना तु पूरयेत्॥'

ममाज्योतिर्मयोभूत्वा वायुपूर्णकलेवरः।
शक्ति भासं तु संत्रास्य, रेचयेद् वायुमार्हितः॥
पिङ्गलामर्कवर्णातु त्यजेद् बुद्ध्वा शनैः शनैः।
अयं पतङ्गकाष्ठाग्निप्रत्याशेन पुनः पुनः॥

अर्थात् प्राणायाम के तीन भेद है। आसन अनेक हैं, इनका साधन दुर्बलों से नहीं हो सकता, महात्मा-पुण्यात्मा ही इसे कर सकते हैं। बायें नथुने से धीरे-धीरे वायु पूर्ण रुप से भरने पर यथा शक्ति कुम्भक करे तदनन्तर दाहिने नथुने से वायु का रेचन करें; इस प्रकार करने से देह-ज्योति विशिष्ट और वायु द्वारा परिपूर्ण रहता है। पुराणों में भी कहा है-

'शान्तिः सन्तोष आहारनिद्राल्पं मनसोदमः।
शून्यान्तःकरणं चेति यमा इति प्रकीर्तिताः॥
दूरं त्यत्त्वा तु चापल्यं मनःस्थैर्यं विधाय च।
एकत्र मेलनं नित्यं प्राणमात्रेण सामतिः॥
सदोदासीनभावस्तु सर्वत्रेच्छाविवर्जनम्।
यथालाभेन सन्तुष्टः परमेश्वरमानसः॥
मानदान परित्याग एतत्तु नियमाइति।
आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः॥
कृत्वाकलेवरं शुद्धं कुर्यांद्यत्नैर्महात्मना।
मनोनिवार्य संसारविषये च तथैव हि॥
मनोविकार भावं च त्यक्त्वा शून्यमयोभवेत्।
प्रत्याहारोभवत्येष सर्वानन्दचमत्कृतः॥
समार्धिनिश्चला बुद्धिः श्वासोच्छ्वासादि वर्जिता।'

अर्थात् शान्ति, संतोष, भोजन, निद्रा का कम होना, चित्त का दमन और अन्तःकरण की शून्यता - इन सबको ही यम बहते हैं। चंचलता का त्याग, मनःस्थैर्य निरन्तर उदासीनता, सकल विषयों में अनिच्छा, यथालाभ में सन्तोष, परमेश्वर में एकाग्रता और मान-दान आदि का त्याग - ये सब नियम हैं। जिस प्रकार जीव अनन्त हैं; ऐसे ही आसन भी अनेक है। प्रयत्न पूर्वक शरीर को विशुद्ध करना, चित्त के विकारों का त्याग, विषयों से चित्त को हटाना, माया-वासना शून्य

होना-प्रत्याहार है। योग के बल से श्वासोच्छ्वास-रहित निश्चल -बुद्धि होना समाधि कहलाती है। ब्रह्मयामल में कहा है-

'इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरतेस्फुटम्।
योगीकुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते॥'

अर्थात् कुम्भक द्वारा इन्द्रियों को स्व स्व विषयों से हटाना प्रत्याहार कहलाता है। और भी कहा है-

'अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमाधृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश॥
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च तपोहुतम्।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्र विशारदैः॥

इत्यादि प्रमाण योगशास्त्र के महत्व में, विभिन्न शास्त्रों के बताये गये। अब प्रवृत्त विषय को कहते हैं।

षट्कर्म

धौतिर्वस्तिस्तथानेति लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्॥१२॥

भावार्थ - धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति इन छः कर्मो का आचरण योगी को करना चाहिए ।॥12॥

योग के अन्य ग्रन्थों में कहा है-

'धौतिश्चगजकरणी च वस्ती लौलितिस्तथा।
कपालभातिर्नेतिश्च षट्कर्माणि महेश्वरि।
मेदश्लेष्माधिकः पूर्वषट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यथानाचरेस्तानि दोषाणां समभावतः॥'

अर्थात् धौति, गजकरणी, वस्ति, नौली, कपालभाति और नेति हे महेश्वरी! ये षट्कर्म कहे जाते हैं। इन्हें गोपनीय रूप में ही करना चाहिए। यदि शरीर में कफ-पित्त आदि दोष न हों तो इन्हें करे।

पंचामरा योग:

'नेतियोगं हि सिद्धानां महाकफविनाशनम्।
दण्डियोगं प्रवक्ष्यामि हृदयग्रन्थिभेदनम्।।
धौतियोगं ततः पश्चात् सर्वमलविनाशनम्।
वस्तियोगं हि परमं सर्वाङ्गोदर चालनम्।।
क्षालनं परमं योगं नाड़ीनांक्षालनंस्मृतम्।
एवं पञ्चामरायोगं योगिनामिति गोचरम्।।'

अर्थात् नेतियोग से श्लेष्म दूर होता है। दण्डियोग से हृदय की गाँठ खुल जाती है, धौतियोग से मलसमूह नष्ट होता है। वस्ति से सब अंग परिचालित होते हैं और क्षालनयोग से नाड़ियों का क्षालन होता है। इसे पंचामरायोग कहते हैं। इस योग का साधन योगी को अवश्य करना चाहिए।

धौति:

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ।१३।

भावार्थ - धौतिकर्म चार प्रकार का है, अन्तधौर्ति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन-इन्हें करके योगी शरीर को निर्मल करते है। ।।3।

अन्तर्धौति:

वातसारं वारिसारं वह्निसारं वहिष्कृतम्।
घटस्थनिर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा। ।१४।

भावार्थ - वातसार, वारिसार, वह्निसार और वहिष्कृति- ये चार प्रकार की अन्तर्धौति हैं। शरीर को निर्मल करने के लिए इन्हें करना चाहिए ॥4।

वातसारः

काकचन्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः।
चालयेदुदरं पश्चाद् वर्त्मना रेचयेच्छनैः १५।
वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मल कारणम्।
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्धकम् ।१६।

भावार्थ - कौवे की चोंच की तरह दोनों ओठों को बनाकर धीरे-धीरे वायु का पान करें। पूरी तरह पान करने पर उदर में परिचालित कर-कर पश्चात् रेचन करे, इसे वातसार कहते हैं। यह वातसार गोपनीय क्रिया है। इसके द्वारा देह निर्मल होती है और समस्त रोग नष्ट होकर जठराग्नि तीव्र होती है ।15,16।

इसे ही तन्त्र-ग्रन्थों में इस प्रकार कहा है-

'काकचंच्वा पिवेद् वायुं शीतलं वा विचक्षणः।
प्राणायाम विधानज्ञः स भवेद्मुक्तिभाजनः।
सरसं यः पिवेद् वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः॥
नश्यन्ति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामयः।
काकचंच्वा पिवेद् वायुं सन्ध्ययोरुभयोरपि॥
कुण्डलिन्या मुखेध्यात्वा क्षयरोगस्यशान्तये।
अहर्निशं पिबेद् योगी काकचन्च्वा विचक्षणः॥
दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथास्याद्दर्शनं खलु।'

अर्थात् जो योगी काकचंचु के समान मुख करके, वायु का दोनों सन्ध्याओं में पान करता है; उसे श्रम, दाह, जरा रोग आदि नहीं सताते। दूरदृष्टि, दूर का श्रवण आदि सिद्धियाँ भी उसे मिल जाती हैं। वायु-पान कर, कुण्डलिनी शक्ति में भर गयी है; ऐसा ध्यान करने से क्षय रोग भी निवृत्त हो जाता है, इत्यादि।

वारिसार

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेणचपिबेच्छनैः।
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः ।१७।
वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम्।
साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ।१८।
बारिसारं परां धौतिं साधयेद् यः प्रयत्नतः।
मलदेहं शोधयित्वा देवदेहं प्रपद्यते ।१९।

भावार्थ - शनैः शनैः मुख से जल पीकर कण्ठपर्यन्त् पेट भरे, फिर उसे चला कर अधोमार्ग से निकाल देना चाहिये। यह वारिसार शरीर को निर्मल करने वाली परम गोपनीय क्रिया है। जो इसे प्रयत्न विशेष से करते हैं वे देवताओं की सी देह प्राप्त करते हैं। जो प्रयत्न से इस वारिसार धौति को विधिवत् करते हैं: वे मलिन शरीर को शुद्ध करके देव-शरीर को प्राप्त करते हैं ।17,18,19।

अग्निसार

नाभिग्रन्थिं मेरूपृष्ठे शतवारं च कारयेत्।
अग्निसारमयो धौतिर्योगिनांयोगसिद्धिदा।
उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्नि विवर्धयेत् ।२०।

भावार्थ - निश्वास बन्द करके मेरूपृष्ठ में नाभि को सौ बार लगाने से अग्निसार धौति होती है, इसके करने से पेट के रोग नष्ट होते हैं और जठराग्नि तीव्र होती है ।20।

एषाधौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद् ध्रुवम् ।२१।

भावार्थ- यह धौति देवताओं को भी दुर्लभ और परम गोपनीय है। केवल इसी के करने से देवताओं का सा शरीर हो जाता है; यह निश्चय तथ्य है ।21।

बहिष्कृतधौतिः

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं महत्।
धारयेदर्धयामं तु चालयेदधोवर्त्मना।
एषाधौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन ।२२।

भावार्थ - काकचंचु मुद्रा बना कर, वायु को पीकर पेट में भरना चाहिए। उस भरे हुए वायु को डेढ़ घंटे रोक कर अधोमार्ग से चला कर निकाल देने को बहिष्कृत धौति कहते हैं। यह धौति परम गोपनीय है ।22।

प्रक्षालनम्

नाभिमग्नो जले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडी यावन्मलविसर्जनम्।
तावत् प्रक्षाल्य नाड़ीं च उदरे वेशयेत पुनः ।२३।
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम्।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद् ध्रुवम् ।२४।

भावार्थ - नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर शक्ति-नाड़ी (त्रिवली) को बाहर करके, उसे धोकर पूर्णरीति से साफ कर, फिर हाथों से घी लगाकर उन नाड़ियों को पुनः उदर में रख ले। यह प्रक्षालन देवताओं को भी दुर्लभ है। इस धौति के द्वारा सर्वथा देवतुल्य शरीर हो जाता है यह निश्चय है ।23,24।

तन्त्रों में इस विषय पर कहा गया है-

'स चावश्यं क्षालनं च कुर्यान्नाड्यादिशोधने।
नेग्नीयोगमार्गेण नाडीक्षालन तत्परः।।
भवत्येव महाकालो राजराजेश्वरो यथा।
केवलं प्राणवायोश्च धारणात्क्षालनं भवेत्।।
विनाक्षालनयोगेन देह शुद्धिर्नजायते।
क्षालनं नाडिकादीनां श्लेष्मपित्त निवारणम्।।

अर्थात्- योगी को नाड़ी का शोधन और क्षालन करना चाहिए। जो नेग्नीयोग से नाड़ियों का क्षालन करते है; वे महाकाल और राजराजेश्वर के तुल्य हो जाते हैं। केवल प्राण के धारण से क्षालन योग होता है। क्षालन के बिना देहशुद्धि नहीं होती। कफ-पित्तादि दोष भी इससे नष्ट हो जाते हैं।

यामार्ध धारणाशक्तिं यावन्नसाधयेन्नरः।
बहिष्कृतमहद्धौतिस्तावच्चैव न जायते ।२५।

भावार्थ - साधक जब तक डेढ़ घंटे तक पेट में वायु रोकने की सामर्थ्य न प्राप्त कर ले तब तक इस बहिष्कृत धौति को न करे ।25।

दन्तधौतिः

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयोः।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौति विधीयते ।२६।

भावार्थ - दन्तमूलधौति, जिह्वामूलधौति, कर्णरन्ध्रधौति, और कपालरन्ध्रधौति, ये पाँच प्रकार की दन्तधौति हैं ।26।

दन्तमूलधौतिः

खादिरेण रसेनाथ मृदाचैव विशुद्धया।
मार्जयेद्दन्तमूलं च यावत् किल्विषमाहरेत् ।२७।
दन्तमूलं पराधौतिर्यौगिनां योगसाधने।
नित्यं कुर्यात् प्रभाते च दन्तरक्षाययोगवित् ।२८।

भावार्थ - खैर के रस अथवा शुद्ध मिट्टी से जब तक मैल न छूटे तब तक दांतों की जड़ों का मार्जन करें। योगवेंता को अपने दाँतों के रक्षार्थ नित्य प्रति प्रातःकाल इस धौति को करना चाहिए। योग साधन में यह दन्तधौति मुख्य कर्म है ।27,28।

जिह्वाशोधनम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधन कारणम्।
जरामरणरोगादीन् नाशयेद् दीर्घलम्बिका ।२९।

भावार्थ - अब जिह्वा-शोधन का कारण कहता हूँ। यह दीर्घ-लम्बिकायोग जरामरण-रोगादि को नष्ट कर देता है ।29।

जिह्वामूलधौति प्रयोगः

तर्जनीमध्यमानामा अंगुलित्रययोगतः।
वेशयेद् गलमध्ये तु मार्जयेल्लाम्बिकाजड़म्।
शनैः शनैः मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ।३०।

भावार्थ- तर्जनी, मध्यमा, अनामिका इन तीनों अंगुलियों को गले के बीच में डाल कर जिह्वामूल को साफ करे। बार-बार ऐसा करने से श्लेष्म -दोष नष्ट होता है ।30।

मार्जयेन्नवनीतेनदोहयेच्च पुनः पुनः।
तदग्रं लोहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैः शनैः ।३१।
नित्यं कुर्यात्प्रयत्नेन रवेरूदयकेऽस्तके।
एवं कृते च नित्येलम्बिका दीर्घतां ब्रजेत् ।३२।

भावार्थ - बार-बार मक्खन से जीभ को मार्जन कर, दुहकर, चिमटी से बार-बार बाहर खींचे। नित्य प्रातः समय और सायंकाल इस धौति का अभ्यास करे; ऐसा करने से जिह्वा लम्बी होती है ।31,32।

कर्णधौतिः

तर्जन्यनामिकायोगान् मार्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः।
नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ।३३।

भावार्थ - तर्जनी, अनामिका के योग से दोनों कानों के रन्ध्र को नित्य शुद्ध करे। प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करने से एक प्रकार का नाद व्यक्त होता है ।33।

कपालरन्ध्र प्रयोगः

वृद्धांगुष्ठेन दक्षेणमार्जयेद् भालरन्ध्रकम्।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ।३४।
नाड़ीनिर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ।३५।

भावार्थ - दाहिने हाथ के अँगूठे से कपालरन्ध्र का मार्जन करे। इस धौति के अभ्यास से कफ-दोष नष्ट होता है; नाड़ी निर्मल होती है। प्रातः, भोजनोपरान्त मध्यान्ह में तथा सायंकाल में - त्रिकाल इसका अभ्यास करना चाहिए ।34,35

हृद्धौति

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद् दण्डवमनवाससा ।३६।

भावार्थ - दण्डधौति, वमनधौति और वासधौति - इस प्रकार इसके तीन भेद हैं ।36।

दण्डधौतिः

रम्भादण्डं हरिद्रादण्डं वेत्रदण्डं तथैव च।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ।३७।
कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम् ।३८।

भावार्थ - केले के सारभाग का दण्ड, हरिद्रा का दण्ड और वेत का दण्ड हृदय के मध्य में बार-बार प्रवेश करके, शनैः शनैः निकाले; इसे दण्डधौति कह

हैं। इसके अभ्यास से कफ-पित्त और क्लेद मुख द्वार से बाहर निकल जाता है तथा हृद्रोग नष्ट हो जाते हैं; यह निश्चित है ।37, 38।

वमनधौतिः

भोजनान्ते पिवेद्वरि चाकण्ठं पूरितंसुधीः।
ऊर्ध्वदृष्टिक्षणंकृत्वा तज्जलंवमयेत्पुनः।
नित्यमभ्यास योगेनकफपित्तं निवारयेत् ।३९।

भावार्थ - बुद्धिमान साधक आहार के अन्त में कण्ठ तक जल पीवे और क्षण भर बाद ऊपर को दृष्टि कर, उसे वमन करना चाहिए। ऐसा करने से कफ-पित्त निवृत्त होते हैं ।39।

वासोधौति

चतुरंगुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।
पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मतत् ।४०।
गुल्म ज्वरप्लीहा कुष्ठं कफपित्तं विनश्यति।
आरोग्यं वलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने ।४१।

भावार्थ - चार अंगुल चौड़ी कपड़े की पट्टी को धीरे-धीरे निगले। लम्बाई एक-एक हाथ से आरम्भ करे, पन्द्रह हाथ होना चाहिए। पुनः इसे निकालना चाहिए। उष्ण जल से यह कार्य करना हितकर है; इसे वस्त्रधौति कहते हैं। इसके अभ्यास से गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ, कफ, पित्त दोष आदि का ध्वंस होता है। आरोग्य, बल और पुष्टि की प्रतिदिन वृद्धि होती है ।40,41।

इस विषय में गृहयामल में कहा है-

'चतुरंगुल विस्तारं हस्त पंच दशेनतु।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्ते वस्त्रे शनैर्ग्रसेत्॥'

ततः प्रत्याहरेच्चैतत् क्षालनं धौतिकर्म तत्।
श्वासः कासः प्लीहा कुष्ठं कफरोगश्चविंशतिः।
धौतिकर्मप्रसादेन शुध्यन्ते च न संशयः।

इसका अर्थ उपरोक्त श्लोकार्थ से अभिन्न ही है। रूद्रयामल में भी इसी प्रक कहा है-

'सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं वस्त्रं द्वात्रिंशद् हस्तमानतः।
एक हस्तक्रमेणैव यः करोति शनैः शनैः॥
यावत्द्वात्रिंशदहस्तं च तावत्कालं क्रियांचरेत्।
एतत्क्रिया प्रयोगेन योगीभवति तत्क्षणात्॥
क्रमेणमन्त्रसिद्धिः स्यात् कालजालवशंनयेत्।

वत्तीस हाथ लम्बा, चार अंगुल चौड़ा बारीक कपड़ा, एक-एक हाथ करके प् निगल जाय; उसे फिर क्रम से धीरे-धीरे निकाले। ऐसा करने से कफादि दोष न होते हैं और मन्त्रसिद्धि होती है तथा मृत्यु के भय से रोगी मुक्त हो जाता है। उ धौति कर्मो में यही प्रधान है; इसलिए हठयोग-प्रदीपिका में इसे ही केवल मा है ।4।।

मूलशोधनम्

अपानक्रूरतातावद्यावन्मूलं न शोधयेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ।४२।
पीतमूलस्थदण्डेनमध्यमांगुलिनापि वा।
यत्नेनक्षालयेद्गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ।४३।
वारयेत् कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्ण निवारयेत्।
कारणं कान्तिपुष्ट्यौश्च दीपनं वह्निमण्डलम् ।४४।

भावार्थ - **जब तक** मूलशोधन न हो, तब तक अपान की क्रूरता रहती है; इसलिए प्रयत्नपूर्वक **गुह्यक्षालन** करना चाहिए। हरिद्रा की जड़ या बीच अंगुली द्वारा जल के साथ यत्नपूर्वक गुह्यप्रक्षालन करना चाहिये। मूलशोधन कोष्ठ की कठिनता आँव-अजीर्णता दूर होती है, जठरानल बढ़ता है ।42,43,4

वस्तिप्रकरणम्

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्तिः स्याद् द्विविधा स्मृता।
जलवस्ति जले कुर्यात् शुष्कवस्ति सदा क्षितौ ।४५।

भावार्थ - जलवस्ति और शुष्कवस्ति के नाम से वस्ति दो प्रकार की हैं। जलवस्ति जल में तथा शुष्कवस्ति स्थल में करना चाहिए ।45।

जलवस्तिः

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम्।
आकुंचनं प्रसारं च जलवस्ति समाचरेत् ।४६।

भावार्थ - नाभिपर्यन्त जल में उत्कटासन से बैठकर गुह्यप्रदेश का आकुञ्चन एवं प्रसारण करने को जलवस्ति कहते हैं ।46।

अन्यत्र कहा है-

'नाभिनिम्न जले वायुं न्यस्तनालोत्कटासनः।
आधारात् मज्जनं कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत्।।
गुल्मप्लीहोदरीरोग वातपित्तकफोद्भवाः।
वस्तिकर्म प्रभावेण सर्वरोगक्षयो भवेत्।।

अर्थात्- नाभिपर्यन्त जल में द्वादशांगुल नल गुह्य प्रदेश में रखे जिससे जल खींचकर जल को बाहर निकालने से मल की शुद्धि होती है। इसके करने से गुल्म, प्लीहा, उदरी, वात, पित्त, श्लेष्म से होने वाले रोग नष्ट होते हैं।

प्रमेहंच उदावर्त क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च कामदेव समो भवेत् ।४७।

भावार्थ - जल वस्ति करने से प्रमेह उदावर्त और क्रूर वायु नष्ट हो जाता है और कामदेव के समान सुन्दर शरीर हो जाता है। ।47।

स्थलवस्तिः

वस्ति पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः।
अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत् प्रसारयेत् ।४८।

भावार्थ - अश्विनीमुद्रा द्वारा गुदेन्द्रिय का आकुञ्चन-प्रसारणं करे। पश्चिमोत्तान आसन से बैठकर अधोभाग की वस्ति को चलावे, इस प्रकार स्थलवस्ति कहते है। इसी को जलवस्ति भी कहते हैं ।48।

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते।
विवर्धयेज्जठराग्नि आमवातं विनाशयेत् ।४९।

भावार्थ - जलवस्ति का साधन करने से कोष्ठदोष और आमवात नष्ट हो जाते हैं तथा जठराग्नि दीप्त होती है ।49।

नेतियोग:

वितस्तिमात्रं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मतत् ।५०।
साधनान्नेतियोगस्य खेचरीसिद्धमाप्नुयात्।
कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टि: प्रजायते ।५१।

भावार्थ - आधे हाथ का डोरा नासिका में डालकर मुंह से निकालने से नेतिकर्म होता है। इसके साधन से खेचरी सिद्धि होती है; कफदोष नष्ट होकर दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है ।50,51।

योग के अन्य ग्रन्थों में कहा है-

'सूत्रं वितस्तिमात्रं तु नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखेन गमयेच्चैषा नेतिः स्यात् परमेश्वरि॥
कपालवेधिनीकाष्ठा दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
य ऊर्ध्व जायते रोगोनयत्याशु च तंनतिः॥

अर्थात्- एक बिलस्तमात्र डोरा नासिका में डालकर मुख से निकालने पर, हे परमेश्वरि, नेतिकर्म सिद्धि होता है, इससे सिर के समस्त रोग नष्ट होते हैं और दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

लौलिकीयोग:

अमन्दवेगंतुं दं च भ्रामयेदुभपाश्र्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्धनम् ।५२।

भावार्थ - प्रबल वेग से पेट को दोनों पार्श्वों में घुमावे, इस को लौलिकी य नौलि कहते है। इससे सभी रोग नष्ट होते हैं और जठराग्नि बढ़ जाती है ।52।

त्राटकम्

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यवदश्रूणि त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ।५३।

भावार्थ - जब तक आँसुओं का पतन न हो तब तक बिना पलक बन्द किये किसी लक्ष्य को देखते रहने का नाम त्राटक है ।53।

एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायतेध्रुवम्।
नेत्रदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।५४।

भावार्थ - त्राटक का अभ्यास करने से शाम्भवी सिद्ध होती है नेत्र रोग नष्ट होते हैं और दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है। ।54।

कपालभातिः

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण, शीतक्रमेण विशेषतः।
भालभाति त्रिधाकुर्यात् कफदोषं निवारयेत् ।५५।

भावार्थ - कपालभाति तीन प्रकार की है- वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति। कपालभाति के साधन से कफ-दोष नष्ट हो जाता है ।55।

वातक्रम कपालभातिः

इडयापूरयेद् वायुं रेचयेत् पिगलां पुनः।
पिंगलयापूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ।५६।
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत्।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ।५७।

भावार्थ - इडा से वायु भर कर पिंगला से रेचन करे और दाहिने स्वर से पूर्ण करके वाम स्वर (इडा) से रेचन करे। इन दोनों क्रियाओं के करने में शीघ्रता न करे। इसका साधन करने से कफ नष्ट होता है। इसे वातक्रम कपालभाति कहते हैं ।56,57।

व्युत्क्रम कपालभातिः

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्।
पायंपायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ।५८।

भावार्थ - नाक के दोनों नथुनों से जल खींचे और उसे मुख से निकाल दे तथा मुख से जल खींचकर नाक से निकाले, इसको व्युत्क्रम कपालभाति कहते हैं। इससे कफ-दोष नष्ट होता है ।58।

शीत्क्रम कपालभातिः

शीत्कृत्यपीत्वा वक्त्रेण नासानालैविवर्जयेत्।
एवमभ्यास योगेन कामदेवसमोभवेत ।५९।
न जायते च वार्धक्यं जरा नैव प्रजायते।
भवेत् स्वच्छन्द देहश्च कफदोषं निवारयेत् ।६०।

भावार्थ - मुख द्वारा शीत्कार करके जल ले और नथुनों से निकाल दे, इसे शीत्क्रम कपालभाति कहते हैं। इसका अभ्यास करने से काम के समान सुन्दर होकर वार्धक्य जीर्णता से योगी बच जाता है। शरीर स्वस्थ तथा कफ-दोष नष्ट हो जाता है ।59,60।

।।प्रथमोपदेशः समाप्तः।।

द्वितीयोपदेशः

卐 卐

आसन प्रकरणम्

घेरण्ड उवाच

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव जन्तवः।
चतुरशीति लक्षाणि शिवेनाभिहितानि च ।१।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ।२।

भावार्थ - महर्षि घेरण्ड बोले - संसार में जितने जीवजन्तु हैं, उतने ही आसन भी है, पहले श्री शंकर ने चौरासी लाख आसन कहे हैं, उनमें चौरासी श्रेष्ठ हैं और मनुष्य लोक में उन चौरासी में से बत्तीस ही आसन मंगलप्रद हैं ।1, 2।

आसनभेदाः

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।
सिंह च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ।३।
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ।४।

मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डूकं गरूडं वृषम् ॥५।
शालभं मकरं उष्ट्रं भुजंगं योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च ॥६।

भावार्थ – सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, स्वस्तिक, सिंहासन, सिंह, गोमुख, वीर, धनुरासन, मृतासन, गुप्त, मत्स्य, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तान, उत्कट, संकट, मयूर, कुक्कुट, कूर्म, उत्तानकूर्म, उत्तान मंडूक, वृक्षासन, मंडूकासन, वृषभ, शलभ, मकर, उष्ट्र, भुजङ्गासन और योगासन। मनुष्य लोक में उपरोक्त बत्तीस आसन ही सिद्धिप्रद हैं । 3,4,5,6।

अन्यत्र आसनों के विषय में कहा है –

'चतुरशीत्यासनानि सन्ति नानाविधानि च।
तेभ्यश्चतुष्कामादाय मयोक्तानि ब्रबीम्यहम्॥
सिद्धासनं पद्मासनं चोग्रकं चैवस्वस्तिकम्।

अर्थात् आसन चौरासी हैं उनमें सिद्ध, पद्म, उग्र और स्वस्तिक ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

सिद्धासनम्

योनिस्थानकमंध्रिमूल घटिकं सम्पीड्यगुल्फेतरम्,
मेढ्रेसंप्रणिधाय तं तु चिबुकं कृत्वाहृदिस्थापिनम्,
स्थाणुः स यमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरन्तरम्,
मोक्षं चैव विधीयते फलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥७।

भावार्थ – जितेन्द्रिय साधक एक पैर की एड़ी को अण्डकोश और गुदा के बीच में लगावे, और दूसरी को लिंगमूल में रक्खे, ठोड़ी को हृदय में लगावे, फिर स्थिर और सीधा रह कर अचल दृष्टि होकर भ्रूमध्य का अवलोकन करे; इसे सिद्धासन कहते हैं। इसके अभ्यास से मोक्षलाभ होता है ।7।

इसकी प्रशंसा में अन्यत्र कहा है –

'येनाभ्यास वशाच्छीध्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात्।
सिद्धासनं सदासेव्यं पवनाभ्यासिभिः परम्॥
येन संसार मुत्सज्य लभ्यते परमागतिः।
नातः परतरं गुह्यमासनं विद्यतेभुवि॥'

अर्थात् सिद्धासन के अभ्यास से शीघ्र सिद्धि होती है। इसके बराबर कोई दूसरा आसन नहीं है। इससे संसार का त्याग और मोक्ष मिलता है। पवनाभ्यासी को इसका अभ्यास सदा करना चाहिए। इसका अनुष्ठान और प्रकार से भी होता है। यथा –

योनिं संपीड्ययत्नेन पादमूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेद्योगवित्सदा॥
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलोनियतेन्द्रियः।
विशेदवक्रकायऽश्च रहस्युद्वेगवर्जितः॥
एतत् सिद्धासनं प्रोक्तं सिद्धानांच शुभप्रदम्।'

अर्थात् साधक एक पैर की एड़ी योनि स्थान में लगावे, दूसरी को लिंगमूल में लगाकर भ्रूमध्य में दृष्टि को स्थिर करे, नियतेन्द्रिय, उद्वेगशून्य सरल देह होकर रहे। इसे योगियों के लिए शुभपद सिद्धासन कहते हैं।

पद्मासनम्

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्यवामं तथा,
दक्षोरूपरिपश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।
अंगुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्,
एतद्व्याधि विनाश कारणपरं पद्मासनं प्रोच्यते ।८।

भावार्थ – बायाँ चरण दाहिनी जाँघ पर तथा दाहिना पाँव बायीं जाँघ पर रख कर व्युत्क्रम रीति से हाथों को पीठ पर ले जाकर दाहिने हाथ से बायाँ अंगूठा और बायें से दाहिने पाँव का अंगूठा दृढ़ता से पकड़कर ठोड़ी को हृदय पर लगाकर

नासिका का अग्रभाग देखे, इसके अभ्यास से सभी रोग नष्ट होते हैं। इसे पद्मासन कहते हैं ।8।

तन्त्रों में इस विषय पर कहा गया है-

'पद्मासने स्थितो योगी प्राणापानविधानतः।
पूरयेत्सविमुक्तः स्यात् सत्यं सत्यं हि पार्वति।।
दुर्लभं येनकेनापि धीमतालभ्यते परम्।
अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति तत्क्षणात्।।
भवेदभ्यासने सम्यक् साधकस्य न संशयः ।८।

अर्थात् पद्मासन में स्थित योगी प्राणापान के विधान द्वारा पूरक रेचक, कुम्भकादि को करे, ऐसा करने से योगी मुक्त हो जाता है। अभ्यास काल में समरूप से प्राण का प्रवाह होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।8।

भद्रासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितः।
पादांगुष्ठं कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः।।
जालंधरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयन्।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ।९।

भावार्थ - दोनों एड़ियों को अण्डकोशों के नीचे उलटकर रखे, पीठ की तरफ से पद्मासन की तरह दोनों अंगूठों को पकड़े। जालंधर-बन्ध की स्थिति में होकर नासाग्र भाग को देखे, इसे भद्रासन कहते हैं, इसका अभ्यास होने से सब रोग नष्ट होते हैं ।9।

मुक्तासनम्

पायु मूले बामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि।
शिरोग्रीवासमं कार्य मुक्तासनं तु सिद्धिदम् ।१०।

भावार्थ - बायीं एड़ी गुदा की जड़ में लगाकर उसके ऊपर दाहिनी एड़ी रक्खे और मस्तक -ग्रीवा को समभाव से रख, देह को सीधा करके बैठे; इसका नाम मुक्तासन है, इससे योगी सिद्धि -लाभ करता है ।।10।

वज्रासनम्

जंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपार्श्वे दपावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम् ।११।

भावार्थ - दोनों जांघों को वज्र के समान कठोर करके दोनों पैरों को गुदा के दोनों ओर लगाने से व्रजासन सिद्ध होता है। इससे योगियों को सिद्धि प्राप्त होती है ।।11।

स्वस्तिकासनम्

जानूर्वोन्तरं कृत्वा योगीपादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।१२।

भावार्थ - दोनों जांघों और घुटनों के मध्य में दोनों पादतलों (तलवों) को रख कर त्रिकोणाकार आसन बाँधना तथा सरल भाव से बैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं ।।12।

इसका भिन्न प्रकार ऐसा बताया गया है-

'जानूर्वोरन्तरे सभ्यग् धृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते।।
अनेन विधिना योगी साधयेन मारूतं सुधीः।
देहेन क्रमते व्याधिस्तस्य वायुश्चसिध्यति।।
स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं सुस्यीकरणमुत्तमम्।'

इसका अर्थ ऊपर के समान ही स्पष्ट है।

सिंहासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतांगतौ।
चितिमूलोभूमिसंस्थः कृत्वा च जानुनोपरि।
व्यक्तवक्त्रो जलध्रं च नासाग्रमवलोकयेत्।
सिंहासनं भवेदेतत्सर्व व्याधिविनाशकम् ।१३।

भावार्थ - दोनों एड़ियों को उलट-पुलट कर अंडकोशों के नीचे लगाकर जालन्धर -बन्ध से भ्रूमध्य में दृष्टि करके, अथवा नासाग्र में दृष्टि लगाकर देखे; इसे सिंहासन कहते हैं। इससे सब रोग नष्ट होते हैं ।13।

जालन्धर - बन्ध का लक्षण ऐसा है-

'बध्वागलशिरोजालं हृदये चिवुकं न्यसेत्।
बन्धोजालन्धरः प्रोक्तो देवानामपि दुर्लभः।।'

अर्थात् गले की नसों को संकुचित करके ठोड़ी को हृदय में लगाने को जालन्धर-बन्ध कहते हैं।

गोमुखासनम्

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्।
थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ।१४।

भावार्थ - भूमि पर दोनों पाँवों को रखकर, पीठ के बगलों में लगाकर शरीर को सीधा करके गोमुख के समान मुख उन्नत करके बैठने का नाम गोमुखासन है ।14।

वीरासनम्

एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदुरूसंस्थितम्।
इतरस्मिन्स्तथापश्चाद् वीरासनमितिस्मृतम् ।१५।

भावार्थ - एक जाँघ पर एक चरण रखकर दूसरे चरण को पीछे की ओर निकाल दे, इसको वीरासन कहते हैं ।15।

धनुरासनम्

प्रसार्य पादौ भुविदण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम्।
कृत्वाधनुस्तुल्यविवर्तितांगं निगद्ययोगी धनुरासनं तत् ।१६।

भावार्थ - दोनों पैरों को पृथ्वी में सीधे फैलाकर, दोनों हाथों को पीठ की तरफ करके दोनों चरणों को पकड़ ले, शरीर को ठीक धनुष की तरह रखे; योगीश्वर इसे धनुरासन कहते हैं ।16।

मृतासनम्

उत्तानशववद्भूमौ शयानं तु शवासनम्।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ।१७।

भावार्थ - मुर्दे के समान सर्वांग शिथिल करके भूमि में लेटने का नाम मृतासन है। इसको ही शवासन कहते हैं, इससे श्रम दूर होता है और चित्त प्रसन्न होता है ।17।

गुप्तासनम्

जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत्।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदंगुप्तासनं विदुः ।१८।

भावार्थ - दोनों घुटनों के मध्य भाग में दोनों पैरों को गुप्त भाव से रक्खे, उन पैरों में गुह्य प्रदेश को रख ले, इसे गुप्तासन कहते हैं ।18।

मत्स्यासनम्

मुक्त पद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यां शिरोवेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा ।१९।

भावार्थ - मुक्त पद्मासन करके हाथ की कोहनियों से शिर को लपेट क चित्त लेटने को मत्स्यासन कहते हैं। इससे रोग दूर होते हैं ।19।

पश्चिमोत्तानासनम्

प्रसार्यपादौभुविदण्डरूपौ सन्यस्तभालश्चितियुग्भमध्ये।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगीन्द्र पीठं पश्चिमोत्तानमातुः ।२०।

भावार्थ - दोनों पाँवों को पृथ्वी में दण्ड के समान सरल भाव से फैलाक यत्न से दोनों पाँवों के अंगूठों को पकड़े और दोनों जंघों पर शिर को धर दे, इसे पश्चिमोत्तानासन कहते हैं ।20।

अन्य ग्रन्थों में इसे ही उग्रासन कहा है-

'विस्तीर्यपादयुगलं परस्परमसंयुतम्।
स्वहस्ताभ्यां दृढं धृत्वा जानू परि शिरोन्यसेत्।।

देहावसादनाशनं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम्।
य एतदासनं श्रेष्ठं प्रत्यहं साधयेत् सुधीः।।

वायुः पश्चिममार्गेण तस्य चरित निश्चितम्।
एतदभ्यासकानां च सर्वसिद्धिश्चजायते।।

तस्माद् योगीयत्नतो वै साधयेत् सिद्धिसाधकः।
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्यकस्यचित्।।
येनशीघ्रं मरूत्सिद्धिर्भवेद् दुःखौघहारिणी।'

अर्थात् दोनों पावों को अलग-अलग फैलाकर, दोनों अँगूठों को हाथों से मजबूती से पकड़कर जानुओं को शिर पर रखने से अग्नि दीप्त होती है; देह का आल्सय नष्ट होता है। इस पश्चिमोत्तान को जो साधक करते हैं, उनका वायु पश्चिम मार्ग में प्रवाहित होता है; सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिए योगी इसका साधन करे, इससे मरूत्सिद्धि होती है। इसका गोपन करना चाहिये।

मत्स्येन्द्रासनम्

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः।
निम्नांगवामपादं हि दक्षजानूपरिन्यसेत्॥
तत्रयाम्यं कूर्परं च याम्ये करे च वक्त्रकम्।
भ्रुवोर्मध्येगतां दृष्टिं पीठंमात्स्येन्द्रमुच्यते ।२१।

भावार्थ - पेट को पीठ के समान सरल भाव से रखकर यत्नपूर्वक बाएं पाँव को नबाकर दाहिनी जाँघ पर रखे, उस पर दाहिनी कोहिनी रखे, मस्तक के मध्य को दृष्टि से निरीक्षण करे; इसे मत्स्येन्द्रासन कहते हैं ।21।

गोरक्षासनम्

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानाव्यक्तसंस्थितौ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः॥
कंठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत्।
गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनांसिद्धिकारणम् ।२२।

भावार्थ - दोनों घुटने जाँघों के बीच में उत्तान गुप्त रूप से रखे। दोनों हाथों से दोनों एड़ियों को पकड़े, कण्ठ को संकोच कर नासाग्र को देखे; इसे योगियों की सिद्धिप्रद गोरक्षासन कहते हैं ।22।

उत्कटासनम्

अंगुष्ठाभ्यामव्ष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ।
तत्रौपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ।२३।

भावार्थ - चरणों के अंगूठों को भूमि में टेक कर दोनों एड़ियों को निरालम्ब कर, ऊपर को उठा दे। गुह्य स्थान को एड़ियों पर रखें; इसे उत्कटासन कहते हैं ।23।

संकटासनम्

वामपादंचितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले।
पाददण्डेनयोगेन वेष्टयेद् वामपादकम्।
जानुयुग्मेकरौ युग्ममेतत्तु संकटासनम् ।२४।

भावार्थ – बायाँ पाँव और घुटना पृथ्वी में रखकर दाहिनी चरण से बायें पाँ
को लपेट कर दोनों घुटनों पर दोनों हाथों को रक्खें, इसका नाम संकटासन है ।24

मयूरासनम्

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां
तत्कूर्परे स्थापित नाभिपार्श्वम्।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे
मायूरमेतं प्रवदन्ति पीठम् ।२५।

भावार्थ – दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि में टेक कर दोनों कोहिनयों क
दोनों पार्श्वो में लगावे। दोनों पाँवों को पीछे की ओर डण्डे के समान खड़ा कर दे
इसको मयूरासन कहते हैं ।25।

कुक्कुटासनम्

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
कूर्पराभ्यां समासीनो मञ्चस्थः कुक्कुटासनम् ।२६।

भावार्थ – मुक्त पद्मासन से बैठकर दोनों जाँघ और घुटनों के मध्य दोनों हाथ
को करके मंच की तरह उठने-बैठने को कुक्कुटासन कहते हैं ।26।

कूर्मासनम्

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ।
ऋजुकाय शिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ।२७।

भावार्थ - अण्डकोषों के नीचे दोनों एड़ियों को उलट-पुलट कर रखने को तथा देह, शिर और गर्दन को सीधा करके बैठने को कूर्मासन कहते हैं ।27।

उत्तानकूर्मासनम्

कुक्कुटासन बन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम्।
पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम् ।२८।

भावार्थ - कुक्कुटासन करके दोनों हाथों से कन्धों को पकड़ लेना और कछुए की तरह उत्तान हो जाना; इसको उत्तानकूर्मासन कहते हैं ।28।

उत्तानमण्डूकासनम्

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः।
एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डूकम् ।२९।

भावार्थ - मण्डूकासन करके कुहनी से मस्तक को धारण करना और मण्डूक की तरह उत्तान होने का नाम उत्तान मण्डूकासन है ।29।

वृक्षासनम्

वामोरूमूलदेशे च याम्यापादं निधायतु।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद् भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ।३०।

भावार्थ - दाहिना पाँव बायीं जांघ की जड़ से रखकर, वृक्ष के समान खड़े होने को वृक्षासन कहते हैं ।30।

मण्डूकासनम्

पादतलौ पृष्ठदेशे अंगुष्ठे द्वे च संस्पृशेत्।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मण्डुकासनम् ।३१।

भावार्थ - दोनों पांवों की पीठ को ओर ले जाकर मिलावे, अंगूठों के मिल पर दोनों घुटनों को आगे रक्खें; इसे मण्डूकासन कहते हैं ।31।

गरूड़ासनम्

जंघोरूभ्यां धरां पीड्य स्थिरकायो द्विजानुना।
जानूपरिकरं युग्मं गरूड़ासनमुच्यते ।३२।

भावार्थ - दोनों जाँघ और दोनों घुटनों से पृथ्वी दबावे और शरीर को स्थि करे। दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखकर बैठे; इसे गरूड़ासन कहते हैं ।32।

वृषासनम्

याम्यगुल्फे पादमूले वामभागे पदेतरम्।
विपरीर्तस्पृशेद् भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ।३३।

भावार्थ - दाहिनी एड़ी पर गुदा को रक्खे उसके वाम भाग से दूसरे पैर क फिराकर रक्खे और भूमि को स्पर्श करे; इसे वृषासन कहते हैं ।33।

शलभासनम्

अध्यास्य शेते कर युग्मं वक्षे
भूमिमवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्तिचाध्र्वं
वदन्ति पीठंशलभं मुनीन्द्राः ।३४।

भावार्थ - नीचे मुख करके लेट जाय, दोनों हाथों को वक्षःस्थल के नीचे रखकर हथेली को पृथ्वी पर टेके और दोनों पाँवों को बालिस्त भर ऊपर उठा हुआ रखे; इसे शलभासन कहते हैं ।34।

मकरासनम्

अध्यास्य शेते हृदयं निधाय,
भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे,
देहाग्निकारं मकरासनं तत् ।३५।

भावार्थ - नीचे को मुख करके लेटे, हृदय को पृथ्वी से लगाकर पैरों को फैला दे, दोनों हाथों से मस्तक को लगा लें; इसका नाम मकरासन है। यह अग्नि को बढ़ाता है ।35।

उष्ट्रासनम्

अध्यास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं,
पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।
आकुञ्चयेत् सभ्यगुदरास्य गाढ़म्,
उष्ट्रं च पीठं यतयो वै वदन्ति ।३६।

भावार्थ - नीचे को मुंह करके लेटे और पैरों को उलट कर पीठ पर रक्खे फिर दोनों हाथों से पैरों को पकड़कर मुंह और पैरों को दृढ़ता से सकोड़े; इसे उष्ट्रासन कहते हैं ।36।

भुजंगासनम्

अंगुष्ठनाभिपर्यन्तमधौभूमौविनिन्यसेत्।
करतलाभ्यांधरां धृत्वा उर्ध्वशीर्ष फणीवहि।।

देहाग्निवर्धते नित्यं सर्वरोग विनाशनम्।
जागर्ति भुजगी देवी भुजंगासन साधनात् ।३७।

भावार्थ - नाभि से लेकर चरण के अंगूठे तक शरीर को नीचे भूमि पर रक्खे, हथेलियों को जमीन पर टेक कर सर्प की तरह शिर को ऊंचा करे, इसको भुजङ्गासन कहते हैं। इससे सब रोग दूर होते हैं, जठराग्नि बढ़ती है और इससे कुण्डलिनी भी जाग जाती है। ।37।

योगासनम्

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम्।।
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत्।
योगासनं भवेदेतद् योगिनां योगसाधनम् ।३८।

भावार्थ - दोनों चरण उत्तान करके दोनों घुटनों पर रक्खे, दोनों हाथों को चित्त करके आसन पर रखे, फिर पूरक के द्वारा वायु को खींचकर कुम्भक करता हुआ नासाग्र भाग को देखे; इसका नाम योगासन है। योगी को इसे अवश्य करना चाहिए ।38।

卐 卐 卐

।। द्वितीयोपदेशः समाप्तः ।।

तृतीयोपदेशः

卐 卐 卐

मुद्राकथनम्

श्री घरेण्ड उवाच

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धं महाबन्धं महावेधश्च खेचरी ।१।
विपरीतकारिणी योनिः वज्रोली शक्तिचालिनी ।
तडागीमाण्डवीमुद्रा शाम्भवीपञ्चधारणा ।२।
आश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पञ्चविंशति मुद्रावै सिद्धिदाश्चेहयोगिनाम् ।३।

भावार्थ - घेरण्ड ऋषि कहने लगे, महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर, मूलबन्ध, महाबेध, खेचरी, विपरीतकरिणी, योनिवज्रोली, शक्तिचालिनी, तड़ागी, माण्डवी, शाम्भवी, पंचधारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजङ्गिनी - ये पच्चीस मुद्राएँ योगियों को सिद्धि देने वाली हैं ।1,2,3।

इस विषय पर तन्त्रों में कहा है-

'सशैलबनधात्रीणां यथा धारोहि नायकः।
सर्वेषांहठतन्त्राणां तथा धाराहि कुण्डली।।

सुप्तागुरूप्रसादेन यथा जागर्ति कुण्डली।
तदापद्मानि सर्वाणि भिद्यन्तेग्रन्थयोऽपिच॥
प्राणस्यशून्यपदवी तदा राजपथायते।
यदाचितं विनालम्बं तदाकालस्यबन्धनम्॥
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन प्रबोधायितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुत्पा मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥

अर्थात् जैसे शेषराज सशल वन-पृथ्वी आदि सभी के आधार है, उसी तरह हठ तथा तन्त्र का आधार कुण्डलिनी महाशक्ति है। श्री गुरू की कृपा से जब कुण्डलिनी जागती है, तब षट्चक्र तथा तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। प्राण की शून्य पदवी हो जाती है। बिना आलम्ब के ही चित्त स्थिर हो जाता है। इसलिए परमेश्वरी कुण्डलिनी को जगाने के लिए मुद्राभ्यास करना चाहिए।

मुद्राफलकथनम्

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ।
येनविज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ।४।
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्यकस्यचित्।
प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरूतामपि ।५।

भावार्थ - श्री महादेव ने कहा है कि हे देवि मैंने मुद्राओं का विषय कहा जिनके ज्ञान से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। यह ज्ञान परम गुह्य है, हर-एक को नहीं कहना। ये मुद्राएँ योगियों को परम प्रिय ओर देवताओं को भी दुर्लभ हैं । 4,5,।

अन्य ग्रन्थों में भी मुद्राओं के विषय पर कहा है-

'मुद्राणां दशकं ह्येत्तद्व्याधिमृत्युविनाशकम्।
देवेशि कथितं दिव्यमष्टैश्वर्यप्रदायकम्॥
बल्लभं योगिनामेतद्दुर्लभं मरूतामपि।

गोपनीयं प्रयत्नेन यथा रत्नकरण्डकम्।।
कस्यचिन्नैव वक्तव्यं कुलस्त्रीसुरतं यथा।'

अर्थात् ये दश मुद्राएँ व्याधि रोग को नष्ट करने वाली है। अणिमादि सिद्धियाँ देती हैं। ये योगी तथा देवताओं को भी प्रिय हैं; इन्हें रत्न की पेटी की तरह रखना चाहिए।

महामुद्रा

पायुमूलं वामगुल्फे संपीड्य दृढयत्नतः।
याम्यपादं प्रसार्याथ करेधृत पदांगुलः ।६।
कण्ठ संकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्ये निरीक्षयेत्।
महामुद्राभिधामुद्रा कथ्यते चैव सूरिभिः ।७।

भावार्थ - गुह्यप्रदेश को दृढ़तापूर्वक बायीं एड़ी से दबावें और दाहिने पैर को फैलाकर हाथ से पैर की अंगुलियों को पकड़े और कण्ठ को सिकोड़ कर भौंहों के बीच के स्थान को देखे; इसे महामुद्रा कहते हैं ।6,7।

ग्रहयामल में इसे यों कहा गया है-

'पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य दक्षिणे।
पादं प्रसारितं कृत्वा कराभ्यां धारयेद्दृढम्।।
कण्ठेवक्त्रं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः।
यथादण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते।।
ऋज्वीभूता तथा शक्तिः कुण्डली सहसाभवेत्।
तदासामरणावस्था जायते द्विपुटाश्रिता।
तदाशनैःशनैः रेवरेचयेतं नवेगतः।
इयं खलुमहामुद्रा तवस्नेहात् प्रकाश्यते।।

अर्थात् योनिप्रदेश को बायीं एड़ी से दबाकर, दक्षिण पाँव को फैलाकर, मुंह को दोनों हाथों से पकड़े, कण्ठ में सकोड़ कुम्भक करके वायु को रोके। इस मुद्रा का अभ्यास करने से, दण्ड से आहत सर्प जैसे दण्ड के समान खड़ा हो जाता है;

ऐसे ही कुण्डलिनी भी सरल भाव को धारण कर लेती है। तदनन्तर कुम्भक की भरी वायु को धीरे-धीरे निकाल दे; इसे ही महामुद्रा कहते हैं। और भी कहा है-

'अनेनविधिनायोगी मन्दभाग्योऽपि सिध्यति।
सर्वासामेवनाडीनां चालनं विन्दुमारणम्।
जारणं तु कषायाय पातकानां विनाशकम्।
सर्वं रोगोपशमनं जठराग्निविवर्धनम्॥
बपुषः कान्तिममलां जरामृत्यु विनाशनम्।
वाञ्छितार्थ फलं सौख्यमिन्द्रियाणां च मारणाम्॥
एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य योंगिनः।
भवेदभ्यासतोवश्यं नात्रकार्य विचारणा॥
गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते।
यांतु प्राप्यभवाम्भोधेः पारंगच्छन्ति योगिनः॥
मुद्राकामदुधाह्येषा साधकानांमयोदिता।
गुप्तचारेण कर्त्तव्या न देयायस्यकस्यचित्॥

ग्रहयामल में कहा गया है-

'महाक्लेशादयो दोषः क्षीयन्ते मरणादयः।
महामुद्रातु तेनैव समाख्याता महेश्वरि॥
चन्द्रांगेन समभ्यस्य सूर्यांगेन समभ्यसेत्।
यावत्संख्याभवेत्तस्या ततः संख्यां विसर्जयेत्॥
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपिनीरसाः।
अभिभुक्तं विषंघोरं पीयूषमपि जीर्यति॥
क्षयकुष्ट गुदावर्त गुदप्लीहा पुरोगमाः।
तस्यदोषाः क्षयंयान्ति महामुद्रां च योभ्यसेत्॥
कथितेयं महामुद्रा जरामरण नाशिनी।
गोपनीया प्रयत्नेन न देयायस्यकस्यचित्॥

अर्थात् महाक्लेशादि और मरणादि दोष, महामुद्रा के आचरण से नष्ट होते हैं। चन्द्रस्वर से अभ्यास करके सूर्यांग से निश्चित संख्या पर्यन्त अभ्यास करने से

पथ्य-अपथ्य विषादि भी भक्षण करने पर पच जाते हैं। क्षयादि रोग महामुद्रा के अभ्यास से नष्ट होते हैं। जरामरण के नाश वाली यह महामुद्रा है। इसे गोपनीय रखना चाहिए।

नभोमुद्रा

यत्र-तत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा।
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरोभूत्वाधारयेत्पवनं सदा ।८।
नभोमुद्राभवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी।

भावार्थ - . योगी निरन्तर सब कामों में स्थिर ऊर्ध्वजिह्व होकर कुम्भक द्वारा वायु को रोके। इसको नभोमुद्रा कहते हैं, इससे योगी के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।8।

उड्डीयानबन्ध

उदरे पश्चिमे तानं नाभेरुर्ध्वन्तुकारयेत्।९।
उड्डीयानं कुरुतेयत् तदविश्रान्त महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातंग केशरी।१०।

भावार्थ - नाभि के ऊपर के भाग और पश्चिम द्वार को उदर के समभाव में संकोच करे अर्थात् उदर के अधोभाग में स्थिर गुह्यादि चक्र की सब नाड़ियों को नाभि के ऊपर को उठावे- इसका ही नाम उड्डीयान बन्ध हैं यह बन्ध मृत्युरूप हाथी के लिए सिंह के समान है ।9,10।

अन्यत्र उड्डीयान का फल ऐसा भी लिखा है-

'नित्यंयः कुरूतेयोगी चतुर्वारं दिने-दिने।
तस्यनाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येनशुद्धोभवेन्मरूत्।।
षणमासमभ्यसेद् योगी मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिश्चजायते।।

रोगाणां संक्षयश्चापि योगिनां भवति ध्रुवम्।
गुरौर्लब्ध्वातु यत्नेन साधयेच्चविचक्षणः॥
निर्जनेसुस्थिते देशे बन्धं परम दुर्लभम्।

अर्थात् दिन में चार बार इस उड्डीयान-बन्ध को जो करता है, उसकी नाभि-शुद्धि और मरूत्-शुद्धि होती है। छः मास तक इसका अभ्यास करने से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। इसके अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है, शरीर पुष्ट कर रस संचार होता है। इसका उपदेश प्राप्त कर एकान्त में अभ्यास करना चाहिए। दत्तात्रेय संहिता में कहा है-

'अभ्यसेद्यस्तु सत्त्वस्थो वृद्धोऽपि तरूणायते।
षणमासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः॥'

अर्थात् उड्डीयान के अभ्यास से बूढ़ा भी जवान हो जाता है। छः महीने के अभ्यास से अवश्य मृत्यु पर विजय होती है।

समग्राद् बन्धनाद्धयेतदुड्डीयानं विशिष्यत।
उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ।११।

भावार्थ - जितने बन्ध हैं उनमें उड्डीयान प्रधान है। इसके अभ्यास से मुक्ति अनायास ही हो जाती है ।।11।।

जालंधर बन्ध

कण्ठ संकोचनं कृत्वा चिवुकं हृदयेन्यसेत्।
जालन्धरे कृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।
जालन्धरं महामुद्रामृत्योश्चक्षय कारिणीं ।१२।

भावार्थ - कण्ठ को संकोच कर, हृदय पर ठोड़ी को रखकर जालन्धर बन्ध होता है। इससे सोलह तरह का आधार - बन्ध होता है और यह मृत्यु को पराजित करता है ।।12।

ग्रहयामल में कहा है-

'कण्ठमाकुञ्चयहृदये स्थापयेतु चिवुकं दृढ़म्।
बन्धोजालन्धराख्योऽयममृता व्ययकारकः॥'

अर्थात् कण्ठ को संकोच कर, ठोड़ी को दृढ़ता के साथ हृदय पर रक्खे। इसे जालन्धर-बन्ध कहते हैं। इसके द्वारा शरीरस्थ अमृत निरन्तर परिपूर्ण रहता है।

सिद्धं जालन्धरं बन्धं योगिनां सिद्धिदायकम्।
षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नात्र संशयः ।१३।

भावार्थ - यह जालन्धर - बन्ध योगियों को सिद्धि प्रदान करता है। इसके छः महीने के अभ्यास से योगी सिद्ध हो जाता है ।13।
अन्य ग्रंथों में कहा है-

'बन्धनानेन पीयूषंस्वयं पिबति बुद्धिमान्।
अमरत्वं च सम्प्राप्य मोदते भुवनत्रये॥
जालन्धर बन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः।
अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिनासिद्धिमिच्छता॥'

अर्थात् इस जालन्धर-बन्ध से योगी अमृत पान करता है और इससे अमृतत्व प्राप्त कर योगी भुवन-त्रय में विचरता है। इसलिए योग-सिद्धि चाहने वाले को इसका अभ्यास सदैव करना चाहिए।

मूलबन्ध

पार्ष्णिना वामपादस्त योनिमाकुञ्चयेत्ततः।
नाभिग्रंथिमेरूदण्डे संपीड्य यत्नतः सुधीः ।१४।
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढ़बन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते ।१५।

भावार्थ - बायीं एड़ी से गुह्यप्रदेश की सिकोड़े और यत्नतः मेरूदण्ड में नाभिग्रन्थि को लगाकर दबावे तथा दाहिनी एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता के साथ दाब कर रक्खे; इसको मूलबन्ध कहते हैं। इससे बुढ़ापा दूर हो जाता है। 14,15।

'पादमूलेन सम्पीड्य गुदमार्गं सुयंत्रितम्
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत्॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः।'

अर्थात् गुह्यप्रदेश को गुल्फ (एड़ी) से दबाकर भली भांति बांधे हुए अपान वायु को बल के साथ धीरे-धीरे ऊपर को खींचे, इसका नाम मूलबन्ध है। यह बुढ़ापा तथा मृत्यु को हटाता है।

संसार समुद्रं तर्त्तुमभिलषति यः पुमान्।
विजनेषु गुप्तो भूत्वा मुद्रामेनां समभ्यसेत् ।१६।
अभ्यासाद् बन्धनस्यास्य मरूत्सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
साधयेद्यत्नतो तर्हि मौनी तु विजितालसः ।१७।

भावार्थ - जो संसार से तरना चाहते हैं, वे निर्जन में छिपकर इस मुद्रा का अभ्यास करें। इसका अभ्यास करने से निश्चय ही मरूत्-सिद्धि होती है। अतएव आलस्यरहित मौनी होकर यत्नपूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए ।16,17।

इस मूलबन्ध से योनिमुद्रा की सिद्धि होती है। इसके प्रसाद से साधक आकाश में उड़ता है।

महाबन्धः

वामपादस्य गुल्फे तु पायुमूलं निरोधयेत्।
दक्षपादेन तद् गुल्फे सम्पीड्य यत्नतः सुधीः ।१८।

शनैः शनैश्चलयेत् पार्ष्णि योनिमाकुञ्चयेच्छनैः।
जालन्धरे धारयेत्प्राणं महाबन्धोनिगद्यते ।१९।

भावार्थ - बायीं एड़ी से गुदामूल का निरोध करके, दाहिने पैर से यत्नपूर्वक बायीं एड़ी को दबाता हुआ धीरे-धीरे गुह्यदेश को चलावे और धीरे-धीरे गुह्यदेश को सिकोड़े तथा जालन्धर - बन्ध से प्राण वायु को धारण करे, इसका नाम महाबन्ध है ।18,19।

तन्त्रों में इस प्रकार कहा है-

'ततः प्रसारितपादो विन्यस्यतमूरूपरि।
गुदायोनिं समाकुञ्च्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगम्॥
योजयित्वासमानेन कृत्वाप्राणमधोमुखम्।
बन्धयेदूदरेऽत्यर्थ प्राणापानाभ्यां यः सुधीः॥
कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदर्शकः।'

अर्थ उक्त श्लोक के अनुकूल ही है।

महाबन्धः परोबन्धो जरामरणनाशनः।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत् सर्ववाञ्छितम् ।२०।

भावार्थ - यह महावन्ध सब मुद्राओं में श्रेष्ठ है। यह जरा मृत्यु को दूर करती है, इसके प्रभाव से सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं।20।

महावेधः

रूपयौवन लावण्यं नारीणां पुरूषं बिना।
मूलबन्ध महाबन्धो महावेधं विना यथा ।२१।
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकं चरेत्।
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धि दायकः ।२२।

भावार्थ - पुरूष के बिना जैसे स्त्री का रूप यौवन और लावण्य व्यर्थ है, ऐसे ही महावेध के बिना मूलबन्ध और महाबन्ध निष्फल है। प्रथम महाबन्धमुद्रा का अभ्यास कर उड्डीयान-बन्ध कर कुम्भक से वायु को रोके, इसे महावेध कहते हैं ।22।

महाबन्धमूलबन्धौ महावेधसमन्वितौ।
प्रत्यहं कुरूतेयस्तु स योगीयोगवित्तमः ।२३।
न च मृत्यु भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते।
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुंगवैः ।२४।

भावार्थ - जो योगी प्रतिदिन महावेध के साथ महाबन्ध और मूलबन्ध का आचरण करते हैं, वे योगी योगियों में श्रेष्ठ हो जाते हैं; मृत्यु बुढ़ापा उन पर आक्रामण नहीं करता। यह परमगुह्य है, इसे गुप्त रखना चाहिए ।23,24।

खेचरी मुद्रा

जिह्वाधोनाड़ीं संछिन्नां रसनां चालयेत् सदा।
दोहयेन्नवनीतेन लोहयन्त्रेण कर्षयेत् ।२५।
एवं नित्यं समाभ्यासाल्लम्बिकादीर्घतां ब्रजेत्।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी ।२६।
रसनां तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।
कपालकुहरेजिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्येगता दृष्टिर्मुद्राभवति खेचरी ।२७।

भावार्थ - जिह्वा के नीचे, जिह्वा और उसकी जड़ को मिलाने वाली जो नाड़ी है, उसको छेदता हुआ निरन्तर रसना के अग्र भाग को परिचालित करे, प्रतिदिन ऐसा करने से जिह्वा बड़ी हो जाती है। क्रम से अभ्यास द्वारा जिह्वा को इतना लम्बा करे कि वह भौंह के मध्य तक पहुंच जाय, जिह्वा को क्रमशः तालुमूल में ले जाय तालु के बीच के गड्ढे को कपाल-कुहर कहते हैं। जिह्वा को इस कपाल-कुहर

के मध्य में ऊपर को उल्टी करके ले जाय और दोनों भौंहों के मध्य-स्थल को देखता रहे; इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं।25,26,27।

शास्त्रान्तर में खेचरी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार भी है-

'भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टि विधायसुदृढ़ां सुधीः।
उपविश्यासने वज्रे नानोपद्रववर्जिते॥
लाम्बिकोर्ध्वस्थितेगतंलां रसनां विपरीतगाम्।
संयोजयेत्प्रयत्लेन सुधाकूपे विचक्षणः॥
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरागतः।'

अर्थ उक्त श्लोकों के अनुसार ही है।

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरामृत्युर्देवदेहं प्रपद्यते ।२८।

नाग्निनादह्यतेगात्रं न शोषयति मारूतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुङ्गमः ।२९।

लावण्यं च भवेद् गात्रे समाधिर्जायते ध्रुवम्।
कपाल वक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात् ।३०।

नाना रससमुद्भूतमानन्दं च दिने-दिने।
आदौ लवणक्षारं च ततस्तिक्त कषायकम् ।३१।

नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्रमधूनि च।
द्राक्षा रसं च पीयूषं जायते रसनोदकम् ।३२।

भावार्थ - खेचरी के अभ्यासी को मूर्च्छा, क्षुधा और प्यास नहीं सताते, न आलस्य आता है। रोग, बुढ़ापा और मौत का भय नहीं रहता। शरीर देव तुल्य हो जाता है। खेचरी-अभ्यासी को अग्नि नहीं जला सकती, न वायु सुखा सकता, न

जल भिगा सकता, न सर्प काटता है। शरीर में लावण्य (सौन्दर्य) आता है। समाधि-सिद्धि होती है। कपाल और रसना के योग होने पर अनेक रस पैदा होते हैं। जो इसका अभ्यास करते हैं उनकी जिह्वा से विलक्षण रस का संचार होता है। नये-नये आनंद उत्पन्न होते है। पहले-पहल लवण, पश्चात् क्षाररस, फिर तिक्त, फिर कषाय, इसके बाद मक्खन, घी, दूध, दही-मट्ठा, मधु (शहद), दाख, अमृत आदि स्वादिष्ट रसों का आविर्भाव होता है ।28,29,30,31,32।

विपरीतकरिणी मुद्रा

नाभिमूलेवसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः।
अमृतं ग्रसते मृत्युस्ततो मृत्युवशो नरः ।३३।
ऊर्ध्वं च जायते सूर्यचन्द्र च अध आनयेत्।
विपरीतकरीमुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता ।३४।
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मा समाहितः।
ऊर्ध्वपादः स्थिरोभूत्वा विपरीतकरीमता ।३५।

भावार्थ - नाभि में सूर्य नाड़ी और तालुमूल में चन्द्र नाड़ी है। सहस्रार में सुधा-धारा प्रवाह होता है। सूर्य नाड़ी के अमृत पान से जीव मरता है। यदि चन्द्र नाड़ी से उसे पीले तो मृत्यु का भय नहीं रहता। इसलिए सूर्य नाड़ी को ऊपर तथा चन्द्र नाड़ी को नीचे कर लेना चाहिए। इस विपरीतकरिणी को करने से उक्त बात सिद्ध होती है। शिर को पृथ्वी में लगा कर दोनों हाथों को टेक ले, दोनों पाँवों को ऊपर उठा कुम्भक द्वारा वायु रोके-इसे ही विपरीतकरिणी कहते हैं ।33,34,35।

मुद्रैयं साधिता नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत्।
ससिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति।३६।

भावार्थ - इस मुद्रा के अभ्यास से जरा-मृत्यु नष्ट होते हैं। इसका अभ्यासी सब लोकों में सिद्ध होकर प्रलय में भी दुखी नहीं होता ।36।

योनिमुद्रा

सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्न सोमुखम्।
अंगुष्ठ तर्जनी मध्यानामाभिश्चैव साधयेत् ।३७।

काकीभिः प्राणं संकृष्य अपाने योजयेत् ततः।
षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हूं हंसमनुना सुधीः ।३८।

चैतमन्यमानयेद् देवीं निद्रितां यां भुजङ्गिनीम्।
जीवेन सहितांशक्ति समुत्थाप्यकराम्बुजे ।३९।

शक्तिमयः स्वयंभूत्वा परशिवेन संगमम्।
नाना सुखं विहारं च चिन्तयेत् परमं सुखम्।४०।

शिव शक्ति समायोगादेकान्तेभुविभावयेत्।
आनन्दं च स्वयं भूत्वा अहं ब्रह्मेति सम्भवेत्।४१।

भावार्थ - सिद्धासन से बैठकर दोनों हाथ के अंगूठों से कानों की, दोनों तर्जनी से नेत्रों को, मध्यमा से मुंह को तथा अनामिका से नाक निरूद्ध करे। प्राण को काकीमुद्रा से खींचता हुआ अपान से मिला दे। देहस्थ षट्चक्रों का ध्यान करता हुआ 'हूं' या 'हंस' इन दोनों मन्त्रों से कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर जीवात्मा को उसके साथ सहस्रार में ले जावे; उस समय ऐसी भावना करे कि 'मैं शिव के साथ शक्तिमय होकर परम सुखमय विहार कर रहा हूं। शिवशक्ति के योग से ही आनन्दमय ब्रह्म हूं'- इसे योनिमुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा गोपनीय तथा देवताओं को भी दुर्लभ है। इसका अभ्यास करके साधक सिद्धि प्राप्त करता है और अनायास ही समाधिस्थ हो जाता है ।37,38,39,40,41।

ब्रह्महाभ्रूणहाचैव सुरापीगुरूतल्पगः।
एतैपापैर्नलिप्येत योनिमुद्रा निबन्धनात् ।४२।

यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानिच।
तानिसर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात् ।४३।
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति ।४४।

भावार्थ - योनिमुद्रा के साधन से ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, मद्यपान, गुरूदारागमन आदि पापों से रहित हो जाता है। पृथ्वी के समस्त महापातक उपपातक योनिमुद्रा के बांधने से नष्ट हो जाते हैं; इसलिए मुक्ति चाहने वालों को इसका अभ्यास करना योग्य है ।42,43,44।

शास्त्रान्तर्गत योनिमुद्रा

आदौपूरकयोगेन स्वाधारेपूरयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे योगिस्तमांकुञ्च्य प्रवर्तते।
ब्रह्मयोनि गतंध्यात्वा कामंबन्धूकसन्निभम्॥
सूर्यकोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलं।
तस्योर्ध्वेतु शिखासूक्ष्मा चिद्रूपापरमाकला॥
तत्रापिहितमात्मामेकीभूतं विचिन्तयेत्।
गच्छन्ति ब्रह्म मार्गेण सिद्धित्रयक्रमेणवै॥
अमृतं तद्विसर्गस्थं परमानन्द लक्षणम्।
श्वेतरक्तं तेजसाढ्यं सुधाधाराप्रवर्षणम्॥
पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत् कुलम्।
पुनरेव कुलं गच्छेन्मात्रा योगेन नान्यथा।
सा च प्राणसमाख्याताह्यस्मिन् तन्त्रे मयोदिता।
पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादिशि वात्मकम्॥
योनिमुद्रापरा ह्येषाबन्धतस्याः प्रकीर्तितः।
तस्यास्तुबन्धमात्रेण तन्नास्ति यत्र साधयेत्॥

अर्थात् पहले-पहल पूरक के प्रभाव से मूलाधार वायु को पूर्ण करे। गुदा से उपस्थपर्यन्त योनिदेश कहा जाता है। इसी के संकोच से योनि-मुद्रा होती है। ब्रह्मयोनि में लाल बन्धूक पुष्प सदृश काम का ध्यान, कोटि सूर्य के सदृश कान्तिमान तथा कोटिचन्द्र के समान शीतल रूप में करें।

इसके अनन्तर अग्नि के लपट के सदृश महाशक्ति का चिंतन करें, जो सूक्ष्म चैतन्य परमात्मा के साथ सूक्ष्म रूप में जीव के साथ एक होती है। जीव ब्रह्म मार्ग से सुषुम्नाछिद्र द्वारा गमन करता है। सहस्रार में कुन्डलिनी शिव के साथ मिलकर रहती है, वहां से अमृतधारा टपकती है। ऊपर उठकर जीव कुलामृत का पान कर मूलाधार की ब्रह्मयोनि में जाकर घुस जाता है। इस प्रकार जीव प्राणायाम से गमनागमन करता है। इसे तीन बार करने से मूलाधार पद्म में ब्रह्मयोनि गत कुण्डलिनी परमात्मा की प्राणस्वरूपिणी होकर रहती है। पुनः यह जीवात्मा कालाग्नि आदि शिवात्मक ब्रह्मयोनि मे लीन रूप से उसकी चिंता होती है। इसे ही योनिमुद्रा कहते हैं। इसके प्रभाव से समस्त कामों की सिद्धि होती है। यह मुद्रा सर्वश्रेष्ठ है।

वज्राली मुद्रा

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम् ऊर्ध्वं क्षिपेत्पादयुगंशिरःखे।
शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय वज्रालिमुद्रा कवयो वदन्ति।४५।

भावार्थ - दोनों हाथों को पृथ्वी पर स्थिर भाव से टेक कर दोनों पैरों और मस्तक को आकाश में उठा देने को वज्राली मुद्रा कहते हैं। इससे बल-संचार तथा दीर्घ-जीवन प्राप्त होता है।45।

अयं योगो योगश्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम्।
अयंहितप्रदोयोगो योगिनां सिद्धिदायकः ।४६।

एतद्योगप्रसादेन विन्दुसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
सिद्धेविन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ।४७।

भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रा समाचरेत्।
तथापि सकलासिद्धिस्तस्य भवतिनिश्चितम् ।४८।

भावार्थ - यह योग मुद्रा में श्रेष्ठ, मुक्ति का कारण, परम उपकारी सिद्धिप्रद है। इससे बिन्दु सिद्धि, ऊर्ध्वरेतस्त्व सिद्धि होकर वीर्यपात नहीं होता, विन्दु सिद्धि

होने पर कौन सा कार्य नहीं हो सकता। भोगियों को इसे करने से निःसंदेह सभी सिद्धियां मिलती हैं। 46,.47, 48

शक्तिचालिनी मुद्रा

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।
शयिता भुजगाकारा सार्ध त्रिवलयान्विता:।४९।

यावत् सा निद्रिता देहे तावज्जीवो पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्।५०।

उद्घांटयेत् कपाटं च यथाकुञ्चिकयाहठात्।
कुण्डलिन्या प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत् ।५१।

नाभिं सम्वेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो वहिः स्थितः।
गोपनीयगृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत्।५२।

भावार्थ - मूलाधार में कुण्डलिनी सार्ध त्रिवलय होकर सर्पिणी के रूप में सोयी हुई है। उसकी सुप्तावस्था में योगी अज्ञ अवस्था में रहता है। जैसे चाभी से ताला खुलता है; इसी तरह कुण्डलिनी के जागरण से ब्रह्मरन्ध्र खुलता है। नाभि को वस्त्र से लपेट कर एकान्त स्थान में शक्चिालिनी मुद्रा का अभ्यास करें। नग्नावस्था में बाहर इसका साधन नहीं करना चाहिए। 49,50,51,52।

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरंगुलम्।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्वर लक्षणम्।५३।

एवमम्वरयुक्तं च कटिसूत्रेणयोजयेत्।
भस्मनागात्र संलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत्।५४।

नासाभ्यां प्राणामाकृष्य अपानेयोजयेदवलात्।
तावदाकुञ्चयेद् गुह्यं शनैरश्वनिमुद्रया ।५५।

यावद्गच्छेत् सुषुम्नायां वायुः प्रकाश्येत् हठात्।
तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी।५६।

वद्धश्वासस्ततोभूत्वा उर्ध्वमार्ग प्रपद्यते।
शक्तोर्विनाचालनेन योनिमुद्रा न सिध्यति।५७।

भावार्थ - बालिश्त भर चौड़ा, चार अंगुल लम्बा सफेद मुलायम वस्त्र नाभि पर रख कर कटिसूत्र में बांध दें। शरीर में भस्म लेपन कर, सिद्धासन पर बैठाकर, प्राण को खींच कर अपान से युक्त करें। जब तक सुषुम्ना द्वार से वायु गमन करती हुई प्रकाशित न हो, तब तक अश्विनी मुद्रा से गुह्य का संकोच करता रहे। इस प्रकार श्वास रुकने से कुम्भक के प्रभाव से सर्पाकार कुण्डलिनी जागकर ऊपर मार्ग में खड़ी हो जाती है, अर्थात् सहस्रार में परमात्मा के साथ मिल जाती है। इस शक्ति चालिनी मुद्रा के बिना योनि मुद्रा सिद्ध नहीं होती। 53,54,55,56,57।

आदौ चालनमभ्यस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत्।
इतिते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम्।५८।

गोपनीयं प्रयत्नेन दिने-दिने समभ्यसेत्।
मुद्रेयं परमागोप्याजरामरणनाशिनी।५९।

तस्माद्भ्यासनं कार्य योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः।
नित्यं योऽभ्यसतेयोगी सिद्धिस्तस्य करेस्थिता।
तस्यविग्रहसिद्धिः स्याद् रोगाणां संक्षयो भवेत्।६०।

भावार्थ - चालिनी के बाद ही योनिमुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। हे चण्डकापाले! इस प्रकार शक्तिचालिनी मुद्रा को मैंने कहा। इसे यत्नपूर्वक रखना और प्रतिदिन अभ्यास करना। जो योगी इसका अभ्यास करता है उसे सिद्धियां प्राप्त होती हैं। विग्रह-सिद्धि हो जाती है और रोग नष्ट हो जाते हैं।

तंत्रों में दूसरी तरह भी यह मुद्रा कही गयी है –

'आधारे कमले गुप्तां चालयेत् कुण्डलीं दृढ़ाम्।
अपान वायुमारुह्य वलादाकृष्य बुद्धिमान्॥
शक्तिचालन मुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी।'

अर्थात कुन्डलिनीशक्ति आधार कमल में सो रही है, उसे जगाकर बलपूर्वक अपान वायु को खींचे। यही शक्तिचालिनी मुद्रा है; यह सर्वशक्ति देने वाली हें 58, 59, 60।

ताड़ागी मुद्रा

उत्तरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तडागाकृतिम्।
ताडागी सा परामुद्रा जरामृत्यु विनाशिनी।६१।

भावार्थ – पश्चिमोत्तान आसन से बैठकर पेट को तड़ाग के समान करने को ताड़ागी मुद्रा कहते हैं। इससे जरामृत्यु नष्ट हो जाती है।61।

माण्डुकी मुद्रा

मुखं समुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत्।
शनैर्ग्रसेदमृतं तां माण्डूकीं मुद्रिकां विदुः।६२।

वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमाण्डुकीम्।६३।

भावार्थ मुंह बंद कर तालु में जिह्वा को घुमाने और जिह्वा से शनै-शनै सहस्रदल से टपकते हुए अमृत का पान करे, इसे माण्डुकी मुद्रा कहते हैं। इसके अभ्यास से वलिपलित, झुर्री तथा सफेद बाल का होना दूर हो जाता है। 62, 63।

शाम्भवीमुद्रा

नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत्।
साभवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता।६४।
वेदशास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका इव।
इयन्तु शाम्भवीमुद्रा गुप्ताकुलवधूरिव।६५।

स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम्
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शाभ्भवीम्।६६।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरः।
शाम्भवीं यो विजानाति स च ब्रह्म न चान्यथा।६७।

भावार्थ - भ्रूयुगुल के बीच में दृष्टि को स्थिर कर, एकाग्र मन से चिंता योग पूर्वक परमात्मा का दर्शन करें; इसे शाम्भवीमुद्रा कहते हैं। यह सब तंत्रों में गुप्त रूप से कही गयी है। वेदादि शास्त्र सामान्य गणिका की तरह प्रकाशित है, परन्तु यह शाम्भवी मुद्रा कुलवधू की तरह परम गोपनीय है। जो इसका अभ्यास करता है वह आदिनाथ है, वह नारायण तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्म स्वरूप है। मैं सत्य कहता हूं, शाम्भवी को जानने वाला साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ही है। 64, 65, 66, 67।

पञ्चधारणामुद्रा

कथिता शाम्भवी मुद्रा शृणुष्व पञ्चधारणाम्।
धारणानि समामाद्य किं न सिध्यतिभूतले।६८।

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषुगमनागमम्।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चान्यथा।६९।

भावार्थ - शाम्भवी मुद्रा कही गयी, अब पञ्चधारणा कहते हैं। इन पांचों धारणाओं के सिद्ध होने पर ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो सिद्ध न हो सके। इन धारणाओं की सिद्धि होने से मनुष्य शरीर से ही स्वर्ग में आना-जाना होता है। मनुष्य

इससे मनोगति और खेचरीत्व को पा सकता है। 68,69।

पार्थिवीधारणा

यत्तत्वं हरितालदेश रचितं भौमं लकारान्वितं,
वेदास्तंकमलासनेन सहितम्कृत्वाहृदिस्थापिनम्।

प्राणांस्तत्रविनीय पंचघटिकां चिन्तान्वितां धारये-
देषास्तंभकरीं ध्रुवंक्षितिजयं कुर्यादधोधारणाम्।७०।

भावार्थ - पृथ्वी तत्व का वर्ण हरताल के समान है। वीज 'लँ', चौकोन आकृति, ब्रह्मदेवता है। योग बल से इसे उदय कर हृदय में धारण कर, दो घंटे प्राण के निरोध-पूर्वक, कुम्भक करें; इसे पार्थिवी मुद्रा कहते हैं। इसे ही अधोधारणा-मुद्रा भी कहते हैं। इसके सिद्ध होने पर योगी पृथ्वी जय होता है। अर्थात् पृथ्वी सम्बन्धी घटना से उसकी मृत्यु नहीं होती ।70।

पार्थिवीधारणामुद्रां य करोति हि नित्यशः।
मृत्युञ्जयः स्वयं सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि।७१।

भावार्थ - जो इस पार्थिवीधारणा को करता है वह मृत्यु को जीतकर, सिद्ध होकर पृथ्वी में विचरता है।71।
तंत्रों में इसे अन्य प्रकार से भी कहा है -

'पृथिवीधारणां वक्ष्ये पार्थिवेभ्योभयापहाम्।
नाभेरधो गुदस्योर्ध्वं घटिकां पंचधारयेत्।।

वायुं ततो भवेत् पृथिवी धारणां तद्भयापहाम्।
पृथिवीसम्भवात् तस्य न मृत्युयोगिनी भवेत्।'

इस पद्य में मूलाधार से वायु-धारण कहा गया है, यह विशेष है और सब लक्षण एक सें हैं।

आम्भसीधारणामुद्रा

शंखेन्दु प्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभं।
तत्पीयूष बकार बीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना।

प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चिन्तान्विता धारयेत्।
एषा दुःसहतापपापहरिणी स्यादाम्भसी धारणा।७२।

भावार्थ - जल का वर्ण शंख, चन्द्र, कुन्द के समान शुभ्र है। बकार इसका बीज है, विष्णु देवता। योग-बल से हृदय में इसे उदय कर, प्राण को, एकाग्र चित्त से पांच घड़ी कुम्भक द्वारा धारण करे- इसे आम्भसी धारणा कहते हैं। इसके अभ्यास से जल से मृत्यु नहीं होती। असह्य संसार-पीड़ा नष्ट होती है। इसका दूसरा लक्षण ऐसा भी है -

'नाभिस्थाने ततो वायुं धारयेत् पंचघंटिकाम्।
ततो जललयंनास्ति जलमृत्युर्नयोगिनः॥'

इस लक्षण में नाभि स्थान में वायु-धारण कहना विशेष है ।72।

आम्भसीं परमां मुद्रा यो जानाति स योगवित्।
जले च गंभीरे घोरे मरणं तस्यनोभवेत्।७३।
इयं तु परमा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः।
प्रकाशात् सिद्धि हानिः स्यात् सत्यं वच्मिच तत्वतः।७४।

भावार्थ - आम्भसी धारणा मुद्रा का वेत्ता योगी, भीषण गंभीर जल में पड़कर भी नहीं मरता। यह मुद्रा सब मुद्राओं में मुख्य है; इसका यत्न से गोपन करे मैं यह सत्य कहता हूं। इसे प्रकाशित करने से सिद्धि की हानि होती है।73,74।

आग्नेयीधारणामुद्रा

तन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितं,
तत्त्वं वह्निमयं प्रदीप्तमरुणं रुद्रेणयत्सिद्धिदम्।
प्राणांस्तत्रविनीयपञ्चघटिकां चिन्तान्वितां धारये-
देषा कालगभीरभीतिहरिणी वैश्वानरीधारणा।७५।

भावार्थ - नाभि में अग्नि का वास है। इसका वर्ण इन्द्रगोप कीड़े के तुल्य है, अर्थात् लाल रंग है। रकार इसका बीज है, आकृति त्रिकोण है, रुद्र इसका देवता है। यह तत्व तेज:पुञ्जमय दीप्तिमान और सिद्धिप्रद है। योग से उदय कर चित्त के एकाग्र से पाँच घड़ी तक कुम्भक करके, प्राण को धारण करे- इसे आग्नेयीधारणा कहते हैं। इसके अभ्यास होने पर काल-भय नष्ट हो जाता है और इसके अभ्यासी की अग्नि से मृत्यु नहीं होती।75।

इसे और प्रकार से भी कहते हैं-

'नाभ्यूर्ध्वमण्डले वायुं धारयेत् पंचघटिकाम्।
आग्नेयीधारणा सेयं न मृत्युस्तस्य वह्निना।।
नदह्यते शरीरं हि प्रक्षिप्ते वह्नि कुन्डके।'

अर्थात् नाभि के ऊर्ध्व में पाँच घड़ी कुम्भक करके वायु धारण करे, इसे आग्नेयी धारणा कहते हैं। इसके अभ्यास से अग्नि से मृत्यु नहीं होती। यदि साधक को जलते हुए अग्नि-कुण्ड में भी डाल दें, तो वह नहीं जलता।

प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ पतितो यदि साधकः।
एन्तमुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक्।७६।

भावार्थ - यदि साधक प्रदीप्त अग्नि में भी गिर जाए, तो भी इस मुद्रा के प्रभाव से जीवित रहेगा।76।

वायवीयधारणा

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभमिदंधूम्रावभासं परे,
तत्त्वंसत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता।

प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चिन्तान्वितां धारयेत्।
एषाखेगमनं करोति यामिमांस्याद् वायवीधारणा।७७।

भावार्थ - घुटे हुए अंजन और धुएं के समान कृष्ण वर्ण। यकार बीज और देवता ईश्वर है। यह वायु तत्व सत्व गुणमय है। योग से इसके उदय होने पर एकाग्र मन से कुम्भक कर दो घण्टे तक प्राण को धारण करने से, वायवीयधारणा होती है। इसके अभ्यास होने पर वायु से मृत्यु नहीं होती और साधक को आकाश-गमन प्राप्त होता है।

इसका दूसरा लक्षण ऐसा भी है -

'नाभिभ्रुवोर्मध्ये तु प्रादेशद्वयसम्मिते।
धारयेत् पंचघटिकां वायुं सैवहिवायवी॥'

नाभि और भ्रूमध्य में दो बालिश्त स्थान में, कुम्भक द्वारा पांच घटिका वायु धारण करने से, यह वायवी धारणा होती है, इसका साधन सब विपत्तियों का विनाशक है।77।

इयं तु परमा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।
वायुनाम्रियतेनापि खे च गति प्रदायिनी।७८।

शठायभक्तिहीनाय न देया यस्यकस्यचित्।
दत्तेचसिद्धिहानिः स्यात् सत्यं वच्मिच चण्डते।७९।

भावार्थ - यह मुद्रा जरा मृत्यु को दूर करती है। वायु से साधक की मृत्यु नहीं होती और आकाशगति प्राप्त होती है। भक्तिहीन शठ को इसे नहीं बताना चाहिये। हे चण्ड! ऐसा करने पर सिद्धि की हानि होती है, यह मैं सत्य कहता हूं। 78,79।

आकाशीधारणा

यत्सिद्धौवर शुद्धवारिसदृशं व्योमं परंभासितं,
तत्त्वंदेवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितम्।

प्राणांस्तत्रविनीय पंचघटिकां चिन्तान्वितां धारयेत्,
एतां मोक्षकपाटभेदनकरीं कुर्यान्नभोधारणाम्।८०।

भावार्थ - आकाश तत्व का वर्ण विशुद्ध सागर जल सदृश है। सदाशिव देवता, हकार बीज है। प्राण संयम पूर्वक पांच घड़ी तक कुम्भक करने से इसकी सिद्धि होती है। इसकी सिद्धि से देवत्व और मुक्ति प्राप्त होती है।

'भ्रू मध्यादुपरिष्टात् धारयेत् पंचनाडिकाम्।
वायुं योगी प्रयत्नेन आकाशी धारणा शुभा।।
आकाश धारणां कुर्वन् मृत्युं जयति तत्त्वतः।
यत्रयत्रस्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते।'

यह मुद्रा पांच घड़ी तक भ्रूमध्य के ऊपर कुम्भक करने से होती है। इसे आकाशीधारणा कहते हैं। इससे मृत्यु को भी जीता जा सकता है। वासानुसार योगी को सौख्यवृद्धि होती है।80।

आकाशीधारणा मुद्रां यो वेत्ति स योगवित्।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलयेऽपि न सीदति।८१।

भावार्थ - जो योगवेता आकाशीधारणा को जानता है उसकी मृत्यु नहीं होती है। प्रलय में भी उसे खेद नहीं होता।81।

इस पंचधारणा की प्रशंसा योग ग्रन्थों में इस प्रकार की गयी है -

'मेधावीपंचभूतानां धारणांय: समभ्यसेत्।
शतब्रह्मागतेनापि मृत्युस्तस्य नविद्यते॥
एवं च धारणा: पंच कुर्याद् योगी विधानत:।
ततोदृढ़ शरीरस्यमृत्युस्यस्य न जायते।
इत्येवं पञ्चभूतानां धारणांय: समभ्यसेत्॥
ब्रह्मण: प्रलये चापिमृत्युस्तस्य न विद्यते।'

इसका अर्थ स्पष्ट है

आश्विनीमुद्रा

आकुंञ्चयेद् गुदाद्वारं प्रकाशयेत् पुन: पुन:।
साभवेदाश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी।८२।
आश्विनीपरमामुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी।
वलपुष्टिकरीचैव अकालमरणंहरेत्।८३।

भावार्थ- बारबार गुह्येन्द्रिय का संकोच-प्रसारण करने को आश्विनी मुद्रा कहते हैं। इससे कुण्डलिनी जागती है, गुह्य रोग नष्ट होते हैं। बल पुष्टि की प्राप्ति होती है। और असमय की मौत टल जाती है। 82,83।

पाशिनीमुद्रा

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद् दृढ़बन्धनम्।
सा एव पाशिनीमुद्रा शक्तिप्रवोधकारिणी।८४।
पाशिनी महतीमुद्रा बलपुष्टि विधायिनी।
साधिनीया प्रयत्नेन साधकै: सिद्धिकांक्षिभि:।८५।

भावार्थ- दोनों पाँवों को पाश की तरह गले में दृढ़ रूप से बाँधे, इसे पाशिनी कहते हैं। यह शक्ति को जगाती है। यह श्रेष्ठ मुद्रा है, बल पुष्टि चाहने वाले योगी को यत्नपूर्वक इसकी साधना करनी चाहिए। 84,85।

काकीमुद्रा

काकचञ्चु वदास्येन पिवेद् वायुं शनैः शनैः।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी।८६।
काकीमुद्रा परामुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता।
अस्याः प्रसाद मात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत्।८७।

भावार्थ- कौए की तरह चोंच (as a pipe) के समान मुँह को, जिह्वा निकाल कर बनावे। पुनः धीरे-धीरे वायु का पान करे- इसे काकीमुद्रा कहते हैं। इससे सभी रोग नष्ट होते हैं। यह परम गोपनीय मुद्रा है, इसके करने से योगी कौए के समान सर्वदा नीरोग रहता है।86,87।

मातंगिनीमुद्रा

कण्ठमग्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत्।
मुखान्निर्गमयेत् पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत्।८८।

नासाभ्यां रेचयेत् पश्चात् कुर्यादेवं पुनः-पुनः।
मातङ्गिनी परामुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।८९।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः।
कुर्यान्मातङ्गिनी मुद्रां मातङ्ग इव जायते।९०।

यत्र-यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन साधयेत् मुद्रिकामिमाम्।९१।

भावार्थ- कण्ठ तक जल में खड़े होकर, नासिका के दोनों छेदों से जल खींचे और मुँह से निकाले; इसे बारम्बार करने से मातङ्गिनीं मुद्रा होती है। इससे जरामृत्यु का आक्रमण नहीं होता। निर्जनस्थान में बैठकर एकाग्रचित्त से इसे करे। इसके सिद्ध

होने से साधक हाथी के समान बली हो जाता है। इसके प्रभाव से योगी सर्वदा सुखी रहता है। अतः यत्नपूर्वक इस मुद्रा का साधन करें। 88, 89, 90, 91।

भुजंगिनी मुद्रा

वक्त्रंकिंचित् सुप्रसार्यं चानिलं गलयापिवेत्।
साभवेद्भुजंगिनीमुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी।९२।
यावच्ख उदरेरोगमजीर्णादिविशेषतः।
तत्सर्वनाशयेदाशु यत्रमुद्रा भुजङ्गिनी।९३।

भावार्थ- मुख को फैलाकर गले से वायु को पिए- इसे ही भुजङ्गिनी मुद्रा कहते हैं। इससे बुढ़ापा-मृत्यु दूर होते हैं। उदर के अजीर्णादि रोग इसके अभ्यास से नष्ट होते हैं।92,93।

माहात्म्यम्

इदं तु मुद्रा पटलं कथितं चण्डकापाले।
वल्लभंसर्वसिद्धानां जरामरणनाशकम्।९४।

शठायभक्तिहीनाय न देयं यस्यकस्यचित्।
गोपनीयं प्रयत्नेन दुर्लभं मरुतामपि।९५।

ऋजवेशान्तचित्ताय गुरुभक्तिपराय च।
कुलीनाय प्रदातव्यं भोगमुक्ति प्रदायकम्।९६।

मुद्राणां पटलं ह्येतत् सर्वव्याधि विनाशकम्।
नित्यमभ्यासशीलस्य जठराग्निविविर्धनम्।९७।

तस्य न जायते मृत्युर्नास्य वार्धक्यमायते।
न चाग्निजलमयं तस्य वायोरपिकुतोभयम्।९८।

कासः श्वासः प्लीहा श्लेष्मरोगाश्चविंशतिः।
मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यन्ति न संशयः।९९।

वहुनाकिमिहोक्तेनसारं वच्मि च चण्ड! ते।
नास्तिमुद्रा समंकिञ्चित् सिद्धिदंक्षितिमण्डले।१००।

भावार्थ- हे चण्डकापाले! यह मुद्रापटल जरा-मरण का नाश करने वाला, सब सिद्धों का प्रिय, तुम्हें बताया गया। इसे शठ भक्तिहीन जिस किसी को नहीं देना, देवताओं को भी दुर्लभ हैं इसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना। सरल, शान्त गुरुभक्तियुक्त कुलीन अधिकारी को ही, भुक्ति-मुक्ति प्रद इस योग को देना चाहिए। मुद्राओं का यह पटल सब रोगों का नाशक है। इसका जो नित्य पाठ करेगा उसकी जठराग्नि बढ़ेगी। उसकी मृत्यु-बुढ़ापा नहीं होगा। अग्नि, जल का भय उसे नहीं होगा। वायु का भय तो होगा ही कैसे। कास-श्वास प्लीहा श्लेष्म रोग जो बीस प्रकार के हैं; मुद्रा के साधन से नष्ट हो जाते हैं। हे चण्ड! बहुत कहाँ तक कहें मुद्राओं के समान पृथ्वी में कोई भी सिद्धिप्रद साधन नहीं है। 94 से 100 पर्यन्त।

卐 卐 卐

।तृतीयोपदेशः समाप्तः।।

चतुर्थोपदेशः

卐 卐

प्रत्याहारः

घेरण्ड-उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारमनुत्तमम्।
यस्य विज्ञान मात्रेण कामादिरिपुनाशनम्।१।

भावार्थ- हे चण्ड! अब प्रत्याहार का वर्णन करता हूं, जिसके करने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य--ये छः शत्रु नष्ट होते हैं।1।

यतो-यतो मनश्चरति चाञ्चल्यवशतः सदा।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशंनयेत्।२।

भावार्थ- चंचल मन जहाँ-जहाँ विचरे उसे वहाँ-वहाँ से लौटाकर आत्मा के वश में लावे।2।

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यंदुःश्रुतं तथा।
मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशंनयेत्।३।

भावार्थ- तिरस्कार-पुरस्कार, सुनने योग्य तथा अयोग्य की तरफ से मन को हटाकर आत्म-वश करे।3।

सुगन्धौ वापि दुर्गन्धो घ्राणेषुजायतेमनः।
तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशंनयेत्।४।

मधुराम्लकतिक्तादिरसान्याति यदामनः।
तदाप्रत्याहरेत्तेभ्य आत्मन्येव वशंनयेत्।५।

भावार्थ- सुगन्ध दुर्गन्ध से भी मन को हटावे, मीठा, खट्टा, तीखा आदि रसों में मन चांचल्य हो तो उसे वहां से लौटाकर आत्मा में लगावे; इसे प्रत्याहार कहते हैं।4,5।

।।चतुर्थोपदेशः समाप्तः।।

पञ्चमोपदेशः

卐 卐

प्राणायामः

घेरण्ड उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य यद् विधिम्।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्योभवेन्नरः।१।
आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।
नाड़ीशुद्धिश्च तत् पश्चात् प्राणायामंच साधयेत्।२।

भावार्थ- अब प्राणायाम की विधि कहता हूँ, जिसके साधन से मनुष्य देवतुल्य हो जाता है। पहले-पहले स्थान तथा काल, मिताहार तथा नाड़ी शुद्धि करनी चाहिए। इन चारों के सिद्ध होने पर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।1,2।

स्थान निर्णयः

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां तथान्तिके।
योगारम्भं न कुर्वीत कृतेच सिद्धिहाभवेत्।३।
अविश्वासंदूरदेशे अरण्येरक्षिवर्जितम्।
लोकाकुले प्रकाशश्चतस्मात् त्रीणिविवर्जयेत्।४।

भावार्थ- दूर देश में अविश्वास होता है, अरण्य में रक्षक-शून्य, जन समूह में प्रकाश होने का भय होता है। अतः इन तीनों स्थानों का परित्याग करना चाहिए।3,4।

सुदेशेधार्मिके राज्ये सुभक्ष्ये निरुपद्रवे।
कुटीं तत्र विनिर्माय प्राचीरैः परिवेष्टिताम्।५।

वापीकूपतड़ागं च प्राचीन मध्यवर्ति च।
नात्युच्चं नातिनीचं कुटीरं कीटवर्जितम्।६।

सम्यग्गोमयालिप्तं च कुटीरं तत्रनिर्मितम्।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत्।७।

भावार्थ- सुन्दर धार्मिक राज्य में, खाद्य पदार्थों की जहाँ सुलभता हो, ऐसे उपद्रव रहितदेश में कुटी बनाकर, चहार दीवार बनावे, जिसके अन्दरूनी भाग में तालाब, कुवां आदि भी हो। वह कुटी न बहुत नीची न बहुत ऊँची ही हो। गोबर से लिपी हुयी हो, कोई जानवर उसमें न हो; ऐसे गुप्त स्थान में प्राणायाम का अभ्यास करे।5,6,7।

काल निर्णयः

हेमन्तेशिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौतथा।
योगारम्भं न कुर्वीत कृते योगोहि रोगदः।८।

वसन्ते शरदिप्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत्।
तथा योगी भवेत् सिद्धी रोगान्मुक्तो भवेत् ध्रुवम्।९।

भावार्थ- हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं में योगारम्भ न करे, इनके करने से रोग उत्पन्न करता है। वसन्त-शरद में ही योगाभ्यास करें, इनमें करने से सिद्धि तथा रोग निवृत्ति होती है।8,9।

चैत्रादि फाल्गुनान्ते माघादि फाल्गुनान्तिके।
द्वौ-द्वौ मासौ ऋतुभागौ अनुभावश्चतुश्चतुः।१०।
वसन्तश्चैत्र वैशाखौ ज्येष्ठाषाढ़ौ च ग्रीष्मकः।

वर्षा श्रावण भाद्राभ्यां शरदाश्विन कार्तिकौ।
मार्गपौषौ च हेमन्तः शिशिरोमाघफाल्गुनौ।११।

भावार्थ-चैत्र से लेकर फाल्गुन तक बारह मास, इनमें दो-दो मास की 6 ऋतुएँ होती हैं। माघ से लेकर दूसरे फाल्गुन तक चौदह मास होते हैं दो-दो मास की एक-एक ऋतु तथा चार-चार मास की भी अनुभूति होती है। चैत्र-वैसाख बसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण, भादों वर्षा, कुंवार-कार्तिक शरद, अगहन-पौष हेमन्त और माघ-फाल्गुन शिशिर कहलाते है।10,11।

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतूनां च मयोदितम्।
माघादि माघवान्तेषु वसन्तानुभवस्तथा।१२।

चैत्रादिचाषाढान्तं च निदाघानुभवश्चतुः
आषाढ़ादिचाश्विनान्तं च प्रावृषानुभवश्चतुः।१३।

भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदानुभवश्चतुः।
कार्तिकादिमाघमासान्ते हेमन्तानुभवश्चतुः।१४।

वसन्ते वापिशरदि योगारम्भं समाचरेत्।
तदायोगीभवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते।१५।

भावार्थ- माघ से लेकर वैसाख पर्यन्त वसन्त का अनुभव होता है। चैत्र आषाढ़ तक ग्रीष्म, आषाढ़ से कुंवार तक बर्षा, भादों से अगहन तक शरद, कार्तिक से माघ तक शीत् का अनुभव होता है। वसन्त और शरद ऋतु में योगारम्भ करे तब योग सिद्ध होता है। 12,13,14,15।

मिताहारः

मिताहारं विनायस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।
नानारोगाभवन्त्यस्य किंचिद्योगो न सिध्यति।१६।

भावार्थ- जो मिताहार न करके योगारम्भ करता है; उसको नाना रोग उत्पन्न होते हैं। उसका योग सिद्ध नहीं होता।16।

शाल्यन्नं यवपिंड वा गोधूमपिंडकं तथा।
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम्।१७।

पटोलं पनसं मानं कंकोलं च शुकाशकम्।
द्राढ़िका कङ्करी रम्भोदुम्वरी कंट कंटकम्।१८।

आमरम्भावालरम्भा रम्भादण्डं च मूलकम्।
वार्ताकी मूलकं ऋद्धि योगी भक्षणमाचरेत्।१९।

वालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम्।
पंचशाकं प्रशंसीयात् वास्तुकं हिलमोचिकाम्।२०।

शुद्धं सुमधरं स्निग्धं उदरार्धविवर्जितम्।
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः।२१।

भावार्थ- योगी चावल, जौ का सत्तू, गेहूं का आटा, मूंग, उड़द, चना आदि साफ भूसीरहित करके खावे। परवल, कटहल, मानकन्द, शीतलचीनी, करेला, कन्दुर, अरहर, ककड़ी,केला, गूलर और चौराई आदि का शाक खावे। कच्चा, पक्का, केले के गुच्छे का दण्ड, उसकी जड़, बैंगन, ऋद्धि इन्हें खावे। कच्चा शाक, सामयिक शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और हुरहुर ये पाँच शाक खावे। निर्मल, सुमधुर और स्निग्ध सुरस द्रव्य से, सन्तोष के साथ आधे पेट को भरे, आधे को खाली रक्खे- इसे मिताहार कहते हैं।17 से 21।

अनेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम्।
उदंरस्य तृतीयाशं संरक्षेद् वायुचारणे।२२।

भावार्थ- उदर के आधे भाग को अन्न से भरे, तीसरे को जल से, चौथे को वायु संचार के लिए रिक्त रक्खे।22।

अब इसके आगे त्याग करने की बातें बताते हैं।

निषिद्ध आहार

कट्वम्ले लवणं तिक्तं भ्रष्टं च दधितक्रकम्।
शाकोत्कटं तथामद्यं तालं च पनसंतथा।२३।

कुलंत्थं मसूरं पाण्डुं कूष्माण्डं शाकदण्डकम्।
तुम्वीकोल कपित्थं च कंटविल्वपलाशकम्।२४।

कदम्वं जम्वीरं लिम्वं लकुचं लशुनं विषम्।
कामरङ्ग प्रियालं च हिंगुशाल्मलिकेमुकम्।२५।

भावार्थ- कडुआ, अम्ल, लवण, तिक्त ये चार रस वाली चीजें, भुनी हुई चीजें, दही-मट्ठा, शक्कर, शाक, पेठा, शाकदण्ड घीयाबेर, कैथ, काँटेदार बेल, ढाक, कदम्ब के फूल, जम्वीरी, लकुच, लहसुन, विष, कमरख, प्याज, हींग, सेमर गोभी-इनका योगारम्भ के समय सेवन न करे। 23,24,25।

योगारम्भे वर्जयेत् पथस्त्रीवह्नि सेवनम्।
नवनीतंघृतंक्षीरं गुडशक्रादिचैक्षवम्।
द्राक्षातु नवनीधात्रीं रसमम्लं विवर्जितम्।
पञ्चरम्भा नारिकेलं दाडिमंमशिवांरसम्।२६।

भावार्थ- योगारम्भ के समय मार्गश्रम, स्त्री-सेवन, अग्नि से तापना आदि का परित्याग करे। मक्खन, घी, गुड़, ईख से निर्मित शक्कर, पाँच प्रकार के केले, नारियल, अनार, सौंफ, नोनियाँ, आंवले और अम्लरस वाली वस्तुऐं न खावे।26।

एलां जातिलवङ्गं च पौरुषं जम्बुजाम्बुलम्।
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत्।२७।

लघुपाकं प्रियंस्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।२८।

भावार्थ- इलायची, जायफल, लोंग, तेजोदायक पदार्थ, जामुन, कटजामुन, हर्रे, खर्जूर-इन्हें खावे। सरलता से पचने वाले, चिकने, धातु पौष्टिक, मन के अनुकूल पदार्थ को योगी सेवन करे। 27, 28।

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युषितं तथा।
अतिशीतं चातिचोग्रं भक्ष्यं योगीविवर्जयेत्।२९।

प्रातः स्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं विना।
एकाहारं निराहारं यामान्ते च न कारयेत्।३०।

भावार्थ- कड़ी चीज खाने से पाप-वासना-जनक दुर्गन्ध, अति-उष्ण, बासी-ठंडा और उग्र भोजन-इनका त्याग करे। शरीर को कष्ट पहुंचाना, प्रातःस्नान, उपवास, एकाहार, एक पहर बाद भोजन करना इन बातों को योगी छोड़ दे।29,30।

एवं विधिविधानेन प्राणायामं समाचरेत्।
आरम्भे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्य भोजनम्।
मध्यान्हे चैव सायान्हे भोजनद्वयमाचरेत्।३१।

भावार्थ- इस प्रकार नियमानुकूल प्राणायाम का अभ्यास करे। प्राणायाम करने से पहिले प्रतिदिन घी और दूध का सेवन करे। मध्याह्न एवं सायं दो ही बार भोजन करें।31।

नाड़ी शुद्धिः

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्वले।
स्थलासनेसमासीनः प्राङमुखोवाप्युदङ मुखः।
नाड़ीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत्।३२।

भावार्थ- कुशासन, मृग, ब्याघ्र, कम्बल, स्थल इनमें से कोई आसन पर पूर्वमुख या उत्तरमुख स्थित होकर नाड़ी-शुद्धि करके प्राणायाम का साधन करे।32।

चण्डकापालिरुवाच

नाड़ीशुद्धिंकथं कुर्यान्नाड़ीशुद्धिश्च कीदृशी।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्वदंयानिधे।३३।

भावार्थ- चण्डकापालि ने घेरण्ड मुनि से पूंछा कि नाड़ी-शुद्धि कैसे करना चाहिए। उसका स्वरूप क्या है? इसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ; उसे आप कहें।33।

घेरण्ड उवाच

मलाकुलासुनाड़ीसु मारुतो नैवगच्छति।
प्राणायामः कथं सिद्धस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत्।३४।
नाड़ीशुद्धिर्द्विधाप्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा।
वीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुँ धौतिकर्मणा।३५।

धौतिकर्मपुराप्रोक्तं षट्कर्मसाधनं यथा।
श्रुणुष्व समनुं चण्ड नाड़ीशुद्धिंयथाभवेत्।३६।

भावार्थ- मल से भरी हुई नाड़ियों में पवन का प्रवाह नहीं होता। फिर प्राणायाम साधन कैसा, और तत्वज्ञान ही कैसे हो, इसलिए पहले नाड़ी-शोधन करना चाहिए। नाड़ी शोधन समनु और निर्मनु भेद से दो प्रकार का है। बीज मन्त्र से जो नाड़ी शोधन होता है- उसे समनु और धौति-कर्म से होने वाले शोधन को निर्मनु कहते हैं। धौति कर्म का पहिले निरूपण किया जा चुका है। समनु नाड़ी-शुद्धि को सुनो।34,35,36,।

उपविश्यासने योगी पद्मासनमाचरेत्।
गुर्वादिन्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम्।३७।

नाड़ीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये।
वायुवीजं ततोध्यात्वा धूम्रवर्ण सतैजसम्।३८।

चन्द्रेणपूरयेद्वायुं वीजैः षोडशकैः सुधीः।
चतुःषष्टयामात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत्।
द्वाविंशन्मात्रयावायुं सूर्यनाड्या च रेचयेत्।३९।

भावार्थ- पद्मासन से बैठकर गुर्वादिन्यास करे। गुरु की आज्ञा से प्राणायाम के साधन के लिए नाड़ी शुद्धि करे। फिर वायु-बीज 'यँ' का ध्यान करे। इसे सोलह बार जपता हुआ बायीं नासिका से वायु को खींचें ध्यान के समय इस वायु-बीज को तेजोमय धूम्रवर्ण का मानना चाहिए। पूरक के बाद चौंसठ बार जपने से कुम्भक करे, बत्तीस बार जपता हुआ, दाहिनी नासिका से रेचक करे। 37 से 39।

नाभिमूलाद्वह्निमुत्थाप्य धारयेत्तेजोवनीयुतम्।
वह्निवीजषोडशेन सूर्यनाडया च पूरयेत्।४०।

चतुः षष्ट्या मात्रया च कुम्भकेनैवधारयेत्।
द्वात्रिशन्मात्रयावायुं चन्द्रनाडया च रेचयेत्।४१।

भावार्थ- नाभि में अग्नितत्व को उदित कर 'लँ' युक्त पृथिवी तत्त्व को मिलाकर ध्यान करें। षोडशमात्रा 'रँ' बीज का ध्यान कर दाहिने नासापुट को भरे, चौंसठ मात्रा से कुम्भक करे, बत्तीस मात्रा से जप करता हुआ रेचक करे।40,41।

नासाग्रेशशधृग्विम्बे ध्यात्वा ज्योत्स्नासमन्वितम्।
हं वीजषोडशेनैव इड्यापूरयेन्मरुत्।४२।

चतुःषष्ट्या मात्रया च वं वीजेनैवधारयेत्।
अमृतं प्लावितं ध्यात्वा नाड़ीधौतिं विभावयेत्।४३।

भावार्थ- नासिका के अग्रदेश में चन्द्रबिम्ब के ध्यान पूर्वक 'हँ' बीज को सोलह मात्रा से जप करे, और वामनासिका से 'यँ' बीज वायु को भरे, पुनः 'वँ' बीज-इस बीज से चौंसठ बार बोलता हुआ, सुषुम्ना नाड़ी में कुम्भक द्वारा वायु धारण करें। नासिकाग्र से अमृत टपक रहा है, उससे शरीर की सभी नाड़ियाँ धुल रही हैं। इस प्रकार ध्यान करके 'लँ' बीज का बत्तीस बार जपता हुआ भरे हुए वायु को दक्षिण नासा से रेचक करे।42,43।

एवं विधां नाड़ीशुद्धिं कृत्वा नाड़ी विशोधयेत्।
दृढ़ोभूत्वासनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।४४।

भावार्थ- इस प्रकार नाड़ी शुद्धि से नाड़ी का शोधन करके आसन पर दृढ़ता से बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करे।44।

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायीशीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः।४५।

भावार्थ- सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली कुम्भक, ये आठ कुम्भक हैं।45।

सहितो द्विविधः प्रोक्तः प्राणायामं समाचरेत।
सगर्भोंवीजमुच्चार्य निगर्भों वीजवर्जितः।४६।

भावार्थ- सहित कुम्भक दो प्रकार का है, जो बीज मन्त्र के साथ कुम्भक होता है, उसे सगर्भ तथा बीजमन्त्र रहित को निगर्भ कुम्भक कहते हैं।46।

प्राणायामं सगर्भं हि प्रथमं कथयामिते।
सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः।
ध्यायेद् विधिं रजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम्।४७।

भावार्थ- सगर्भ प्राणायाम की विधि प्रथम कहता हूं, सुनो, पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर, सुख पूर्वक आसन पर बैठकर ब्रह्मा का ध्यान करें, ब्रह्मा लालवर्ण आकार रूपी और रजोगुण युक्त है।47।

इडया पूरयेद्वायुं मात्रया षोडशैः सुधीः।
पूरकान्ते कुम्भकान्ते कर्त्तव्यस्तूड्डीनकः।४८।

सत्वमयं हरिं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम्।
चतुःषट्या मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत्।४९।

तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारंशुक्लवर्णकम्।
द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद् विधिनापुनः।५०।

भावार्थ- बायें नासापुट से 'अँ' बीज को सोलह बार जपता हुआ वायु भरे, कुम्भक के पूर्व और पूरक के अन्त में उड्डीयान बन्ध करे। फिर सत्त्वगुण युक्त उंकार बीज कृष्णरूप हरि का ध्यान कर चौंसठ बार जप करता हुआ कुम्भक करे। तमोगुणी मकार रूपी शिव के ध्यान के साथ 'मँ' बीज को बत्तीस बार जपता हुआ रेचक करे।48,49,50।

पुनः पिंगलयापूर्व कुम्भकेनैव धारयेत्।
इडयारेचयेत् पश्चात् तद्वीजेन यथाक्रमः॥५१।

अनुलोमविलोमेन वारं वारं च साधयेत्।
पूरकान्ते कुम्भकान्ते धृतनाशापुटद्वयम्।
कनिष्ठिकानामिकांगुष्ठैस्तर्जनीमध्यमांविना॥५२।

भावार्थ- फिर दाहिने स्वर से पूरक आदि उक्त रीति से करके कुम्भक करे, एवं बायीं से रेचक करे। इस प्रकार अनुलोम विलोम रीति से करता हुआ, तर्जनी, मध्यमा इन अंगुलियों को न लगावे। अर्थात् बाम नासिका को कनिष्ठिका और अनामिका से और दक्षिण नासिका को केवल अंगूठे से पकड़े।51,52।

निगर्भः

प्राणायामं निगर्भं तु विनावीजेन जायते।
एकादिशतपर्यन्तं पूरककुम्भकरेचनम्॥५३।

उत्तमा विंशति मात्रा षोडशी मध्यमा तथा।
अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधामताः॥५४।

अधमाज्जायते धर्म मेरुकम्पं च मध्यमात्।
उत्तमाद् भूमित्यागं च त्रिविधं सिद्धिलक्षणम्॥५५।

भावार्थ- बिना बीज मन्त्र के निगर्भ प्राणायाम होता है। पूरक-कुम्भक, रेचक इन तीन अङ्ग वाले प्राणायाम की एक से सौ तक मात्राएँ हैं। पूरक एक गुण मात्रा, रेचक द्विगुण मात्रा, कुम्भक चतुर्गुण मात्रा का होता है। इसी प्रकार उत्तम प्राणायाम बीस मात्रा का, सोलह का मध्यम, बारह का अधर्म है। उत्तम के साधन में पूरक 20 मात्रा का, कुम्भक 80 मात्रा का, रेचक 40 का है। ऐसा ही मध्यम अधम है। अर्थात् सोलह और बारह के हिसाब से करना चाहिए। अधम के साधन में पसीना आता है, मध्यम के साधन में मेरुकम्पन होता है। उत्तम में भूमि त्यागकर आकाश

में विचरता है। पसीना, मेरुकम्प और भूमित्याग, ये तीनों सिद्धि-लक्षण हैं। 53,54,55।

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद् रोगनाशनम्।
प्राणायामाद् बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी।
आनंदोजायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।५६।

भावार्थ- प्राणायाम साधन से आकाश-गमन, रोग की निवृत्ति तथा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। जो प्राणायाम का साधन करता है, उसके चित्त में अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है और वह सुखी रहता है।56।

सूर्यभेदः

घेरण्ड उवाच

कथितं सहितं कुम्भं सूर्यभेदनकं श्रृणु।
पूरयेत् सूर्यनाड्या च यथा शक्ति बहिर्मरुत्।५७।

धारयेत् वहुयत्नेन कुम्भकेन जलन्धरैः।
यावत्स्वेदनखकेशाभ्यां तावत्कुर्यात् हि कुम्भकम्।५८।

भावार्थ- घेरण्ड मुनि ने कहा, हे चण्ड! सहित कुम्भक कह चुका। अब सूर्यभेद कहता हूं, सुनो, पहले जालन्धर-बन्ध से दक्षिण नासिका से वायु भरे, अति यत्न से कुम्भक करके इसे धारण करे। जब तक पैर से केश पर्यन्त पसीना न आ जावे, तब तक कुम्भक द्वारा वायु को धारण करे।57।58।

प्राणोऽपानः समानश्च व्यानोदानौ तथैव च।
नागः कूर्मः कृकरो देवदत्तो धनंजयः।५९।

हृदिप्राणो वहेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले।
समानो नाभिदेशेतु उदानः कण्ठमध्यमः।६०।

व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पंचवायवः।
प्राणाद्याः पंच विख्याता नागाद्याः पंचवायवः।६१।

तेषामपि च पंचानां स्थानानि च वदाम्यहम्।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलनेस्मृतः।६२।

कृकरःक्षुत्कृतेज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।
न जहाति मृतेक्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।६३।

नागोगृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चवनिमेषणम्।
क्षुत्तृट् कृकरश्चैव चतुर्थेन तु जृम्भणम्।६४।
भवेत् धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत्।

भावार्थ- प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, दैवदत्त, धनञ्जय, ये दश प्राण हैं। हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान, सारे शरीर में व्यान, ये पांचों प्राण प्रसिद्ध हैं। नागादि भी प्राण कहे जाते हैं। इन्हें उपप्राण कहते हैं। उद्गार में नाग, उन्मीलन में कूर्म, क्षुधा में कृकर, जँभाई में देवदत्त, मरने पर भी जो शरीर त्याग नहीं करता उसे धनञ्जय कहते हैं। नाग से चेतनता, कूर्म से निमेषण, क्षुधा-तृषा कृकर से, देवदत्त से जँभाई, धनञ्जय से शब्द होता है। यदि क्षण मात्र भी वह न निकले।59 से 64।

सर्वेते सूर्यसम्भिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत्।
इडयारेचयेत् पश्चात् धैर्येणाखण्डवेगतः।६५।

पुनः सूर्येणचाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि।
रेचयित्वा प्रसाधयेत् क्रमेणच पुनः-पुनः।६६।

कुम्भकः सूर्यभेदश्च जरामृत्युविनाशकः।
बोधयेत् कुण्डलीं शक्तिं देहानल विवर्धनम्।६७।
इतिते कथितं चण्डं सूर्यभेदनमुत्तमम्।

भावार्थ- कुम्भक करते समय उक्त प्राणादि वायुओं को पिंगला नाड़ी से विभिन्न कर नाभि-मूल देश से समान वायु को उठावे, फिर धैर्य पूर्व बाम नासा से रेचन करे। पुनः दक्षिण नासापुट से वायु भर, सुषुम्ना से कुम्भक कर, वाम नासा से रेचन करे; बारम्बार इसे करे- इसे ही सूर्यभेद कहते हैं। यह कुम्भक जरा-मृत्यु को नष्ट करता है। इससे कुण्डली शक्ति जागती है और देहस्थ अग्नि उठती हैं। हे चण्ड, इस प्रकार सूर्य भेद नामक उत्तम कुम्भक तुम्हें बताया। 65,66,67।

उज्जायीकुम्भकः

नासाभ्यां वायुमाकृष्य वायुं वक्त्रेण धारयेत्।
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत्।६८।

मुखं प्रक्षाल्य संबन्धं कुर्याज्जालन्धरं ततः।
अशक्तिकुम्भकं कृत्वा धारयेदविरोधतः।६९।

उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।
न भवेत् कफरोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम्।७०।

आमवातं क्षयं कासं ज्वर प्लीहा न विद्यते।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीसाधयेन्नरः।७१।

भावार्थ- बाहर रहे हुए वायु को नासिका-द्वय से खींचकर, अन्तस्थ वायु को हृदय, गले से खींचकर, कुम्भक योग द्वारा भीतर धारण करे। मुख प्रक्षालन कर जालन्धर मुद्रा को बांधकर निर्विघ्न रीति से शक्ति के अनुसार धारण करे। इसे उज्जायी कुम्भक कहते हैं। इससे सर्वकर्म सिद्ध होते हैं। श्लेष्म रोग, दुष्ट वायु, अजीर्ण, आमवात, क्षय, कास, जवर, प्लीहा ये सब रोग दूर होते हैं। जो व्यक्ति जरा-व्याधि को पराजित करना चाहता है- उसे उज्जायी कुम्भक का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।68 से 71।

शीतलीकुम्भकः

जिह्वयावायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत् पुनः।७२।

सर्वदा साधयेद्योगीशीतली कुम्भक शुभम्।
अजीर्ण कफपित्तं च नैव देहे प्रजायते।७३।

भावार्थ- जिह्वा द्वारा वायु को खींचकर पेट को वायु से पूर्ण करदे, फिर कुछ समय तक कुम्भक योग से वायु को धारण कर दोनों नासापुट से निकाल दे, इसे शीतली कहते हैं। साधक को इसका अनुष्ठान करना चाहिए। इसके साधन से अजीर्ण, कफ और पित्त से उत्पन्न हुए सब रोग नष्ट हो जाते हैं।72,73।

भस्त्रिकाकुम्भकः

भस्त्रैव लौहकारणां यथाक्रमेण सम्भ्रमेत्।
ततो वायुः च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः।७४।

एवं विंशतिवर च कृत्वा कुर्याच्चा कुम्भकम्।
तदन्ते चालयेद्वायुः पूर्वोक्तं च यथाविधि।७५।

त्रिवारं साधयेदेनंभस्त्रिका कुभकं सुधीः।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने-दिने।७६।

भावार्थ- जैसे लोहार धोंकनी द्वारा वायु भरता है। उसी तरह नासिका द्वारा वायु को पेट में भर, धीरे-धीरे पेट में चालित करे। इस प्रकार बीस बार करके कुम्भक कर, वायु को धारण करें। फिर लोहार की धोंकनी से जैसे वायु निकलती है, वैसे ही नासिका से वायु को निकाले इसे ही भस्त्रिका कुम्भक कहते हैं। इसी प्रकार यथानियम तीन बार करे, इसके प्रभाव से किसी प्रकार की व्याधि नहीं होती। आरोग्य दिन-दिन बढ़ता।74,75,76।

भ्रामरीकुम्भकः

अर्धरात्रिगतेयोगी जन्तूनांशब्दवर्जिते।
कर्णौपिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात् पूरक कुम्भकम्।७७।

ऋणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतंशुभम्।
प्रथमं झिंझिनाद च वंशीनादं ततः परम्।७८।

मेघझर्झरभ्रमरीघंटा कास्यं ततः परम्।
तुरीभेरी मृदङ्गादि निनादानक दुंदुभिः।७९।

एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य योध्वनिः।८०।

ध्वनेरन्तर्गतज्योतिर्ज्योत्तिरन्तर्गतं मनः।
तन्मनोविलयंयाति तद्विष्णोः परमं पदम्।८१।
एवं च भ्रामरी सिद्धिः समाधि सिद्धिमाप्नुयात्।

भावार्थ- आधीरात होने पर जब किसी जीव का शब्द न सुनाई दे, तब ऐसे स्थान में जाकर योगी अपने हाथों से दोनों कानों को बन्द करके पूरक-कुम्भक का अनुष्ठान करे। ऐसा करने से साधक को दाहिने कान में नाना प्रकार के शब्द सुनायी देते हैं। पहले झींगुर का शब्द, इसके बाद वंशीनाद, फिर मेघ, फिर झर्झर, बाजे की ध्वनि, फिर भ्रमर की ध्वनि, फिर घण्टा, फिर काँसे के पात्र, तुरही, भेरी, मृदङ्ग और नगाड़ा का शब्द सुनायी देता है। हृदय में द्वादश दल कमल में होने वाले शब्द की प्रतिध्वनि सुनायी देती है। निमीलित नेत्र से हृदय में द्वादशदल कमल की प्रतिध्वनि के बीच ज्योति का निरीक्षण करता है। यह ज्योति ही ब्रह्म है। इसमें योगी का मन लय होकर उसे विष्णु का परमपद प्राप्त होता है। इस प्रकार भ्रामरी मुद्रा सिद्ध होती है। इसके सिद्ध होने पर समाधि सिद्ध होती है।77 से 81।

मूर्च्छाकुम्भकः

मुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्च भ्रूवोरन्तरम्।
सन्त्यज्य विषयान् सर्वान् मनोमूर्च्छासुखप्रदम्।
आत्मनि मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम्।८२।

भावार्थ- पहिले मुख से, पूर्व कहे हुए कुम्भक करके, विषयों से मन को हटाकर भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र में मन को लगाकर, इस पद्म में स्थित परमात्मा में लय करदे-इसे मूर्च्छा कहते हैं। इस कुम्भक से आनन्द लाभ होता है।82।

केवलीकुम्भकः

हंकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
षट् शतानिदिवारात्रौ सहस्राणियेक विंशतिः।
अजपानाम गायत्रीं जीवोजपति सर्वदा।८३।

भावार्थ- श्वास के निकलने पर 'हँ' प्रवेश पर सकार इस तरह 21600 संख्या में होते हैं। इसी हंस या सोहं को अजपा नाम गायत्री कहते हैं, इसे जीव बराबर जपता रहता हैं। यह संख्या दिन रात की है। 83।

मूलाधारे यथा हंसस्तथाहि हृदिपंकजे।
तथानासापुटे द्वन्द्वे त्रिविधं संगमागमम्।८४।

षण्णवत्यंगुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम्।
देहाद्वहिर्गतोवायु: स्वभावो द्वादशांगुलि:।८५।

गायने षोडशांगुल्यं भोजने विंशतिस्तथा।
चतुर्विंशांगुलिर्मार्गे निद्रायां त्रिशदंगुलि:।
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम्।८६।

भावार्थ- मूलाधार, हृदय पद्म एवं नासापुट में, इन तीनों स्थानों में हंस स्वरूप अजपा का जप होता है, क्योंकि इन तीनों स्थानों में वायु का आना-जाना होता है। स्थूल शरीर का परिमाण 96 अंगुल का है। स्वाभाविक वर्हिगत वायु की गति बारह अंगुल है। यही गति गायन में सोलह अंगुल, भोजन में बीस, मार्ग चलने में चौबीस, निद्रा में तीस, मैथुन में छत्तीस और व्यायाम में इससे भी अधिक हो जाती है।84,85,86।

स्वभावेऽस्यगते न्यूनं परमायु: प्रवर्धते।
आयु:क्षयोऽधिके प्रोक्तो मरुतोचान्तराद्गते।८७।

तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते।
वायुनाघट सम्बन्धे भवेत् केवलकुम्भक:।८८।

यावज्जीवोजपेन्मन्त्रमजपासंख्यकेवलम्।
अद्यावधिधृतं संख्या विभ्रमं केवली कृते।८९।

अतएव हि कर्त्तव्यः केवलीकुम्भको नरैः।
केवली चाजपासंख्या द्विगुणाच्च मनोन्मनो।९०।

भावार्थ- स्वाभाविक प्राण की गति द्वादश अंगुल की होती है। यदि इससे कम गति हो तो आयु बढ़ जाती है। बारह अंगुल से अधिक होने पर आयु क्षीण हो जाती हैं। जब तक शरीर में प्राण वायु रहता है, तब तक मृत्यु नहीं होती। कुम्भक अभ्यास से प्राणवायु को ही मुख्य जानना चाहिए। जीव का शरीर जब तक रहे, केवली करके परिमित्त संख्या में अजपा मन्त्र जपे। केवली करने पर (21600) गति संख्या में कमी हो जाती है और आयु बढ़ जाती है। अतः इसे अवश्य करना चाहिए। अजपा की संख्या से दुगुनी करे, तो चित्त में बड़ा आनन्द होता है।87 से 90।

नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत्।
एकादिकचतुःषष्टि धारयेत् प्रथमे दिने।९१।

केवलीमष्टधा कुर्याद् यामे-यामे दिने-दिने।
अथवा पञ्चधा कुर्याद् यथातत्कथयामि ते।९२।

प्रातर्मध्याह्नसयाह्ने मध्यैरात्रिचतुर्थके।
त्रिसन्ध्यमथवा कुर्यात् सममाने दिने दिने।९३।

पञ्च वारं दिने वृद्धिर्वारैकं च दिने तथा।
अजपापरिमाणं च यावत् सिद्धिः प्रजायते।९४।

प्राणायामं केवलीं च तदावदति योगवित्।
कुम्भके केवली सिद्धौ किं न सिध्यति भूतले।९५।

भावार्थ- नासापुटों से वायु को खींचकर केवल कुम्भक का अनुष्ठान करे। पहले दिन इस कुम्भक का साधन करने पर चौंसठ बार तक, श्वास प्रश्वास वायु को धारण करे। इस कुम्भक को आठ प्रहर में रोज आठ बार अभ्यास करें। अर्थात प्रातः, मध्याह्न, सायं और रात्रि के शेष भाग में इसका साधन करें। अथवा प्रातः, मध्याह्न, सायं इन तीनों कालों में समान संख्या में साधे। जब तक यह कुम्भक सिद्ध न हो तब तक अजपा के साथ, प्रमाण से पांच बार के क्रम से बढ़ाता जाय।91,92,93,94,95

卐 卐 卐

।पञ्चमोपदेशः समाप्तः।।

षष्ठोपदेशः

卐 卐

ध्यानयोगः

घेरण्ड-उवाच

स्थूलं ज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं विन्दुमयं ब्रह्मकुण्डली पर देवता।१।

भावार्थ- ध्यान तीन प्रकार का होता है- स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान। जिसमें मूर्ति, इष्ट देवता अथवा गुरु का चिंतन हो उसे स्थूल और जिसमें तेजोमय ब्रह्म या शक्ति की भावना हो उसे ज्योतिर्ध्यान कहते हैं। जिस ध्यान द्वारा विन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान हो उसे सूक्ष्म ध्यान कहते हैं।।।

स्थूलध्यानम्

स्वकीयहृदयेध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुरत्नवालुकामयम्।२।

चतुर्दिक्षुन्नीपतरु वहुपुष्पसमन्वितः।
नीपोपवन संकूले वेष्टितं परिखा इव।३।

मालती मल्लिका जातीकेशरैश्चम्पकैस्तथा।
पारिजातैः स्थूलैः पद्मैर्गन्धामोदितदिङ्मुखैः।४।

भावार्थ- नेत्र बन्द करके अपने हृदय में सुधा-सागर का ध्यान करे। उसके मध्य में रत्नमय द्वीप का तथा वह द्वीप रत्नमयी बालुका से शोभा दे रहा है। उसके चारों ओर कदम्ब वृक्षों से शोभा हो रही है, पुष्पों के खिलने से वृक्ष शोभित हो रहे हैं। कदम्ब वन के चारों ओर मालती, चमेली, केशर, चम्पा, पारिजात, पद्म से इस द्वीप की खाई बनी है तथा इनके सुगन्ध से चारों दिशाएं मँहक रही है।। 2,3,4।

तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम्।
चतुः शाखचतुर्वेदं नित्य पुष्पफलान्वितम्।५।

भ्रमराःकोकिलास्तत्र गुंजन्तिनिगदन्ति च।
ध्यायेत्तत्रस्थिरोभूत्वा महामाणिक्यमण्डपम्।६।

तन्मध्येतुस्मरेद्योगी पर्यङ्कं सुमनोहरम्।
तत्रेष्टदेवतांध्यायेद् यद्ध्यानंगुरुभाषितम्।७।

यस्यदेवस्ययद्रूपं यथा भूषण वाहनम्।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः।८।

भावार्थ- योगी ऐसा चिन्तन करे। कि उस वन के मध्य भाग में एक कल्प वृक्ष है, उसकी चार शाखाएं हैं, वे चतुर्वेदमय हैं। तत्काल उत्पन्न पुष्प फलों से वे सब शोभित हैं उन पर भ्रमर गुँजार कर रहे हैं। कोकिल शाखाओं पर बैठकर कुहू-कुहू शब्द कर, मन को लुब्ध कर लेती हैं। इस कल्पवृक्ष के नीचे महामाणिक्य जटित एक रत्न-मण्डित मण्डप परम शोभा दे रहा है। उसके बीच में मनोहर 'पलंग' बिछ रहा है, उस पर इष्टदेव विराज रहे हैं। गुरुदेव जैसा उपदेश दिए हों उसी के अनुकूल योगी भूषण वाहन आदि का ध्यान करे- इसे स्थूल ध्यान कहते हैं।5 से 8।

प्रकारान्तरेणस्थूलध्यानम्

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिन्तयेत्।
विलग्नसहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम्।९।

शुक्लवर्णं महातेजो द्वादशैर्बीजभासितम्।
ह स क्ष म ल व र यूं ह स ख फ्रें यथाक्रमम्।१०।

तन्मध्ये कर्णिकांयां तु अकथादिरेखात्रयम्।
ह ल क्ष कोण संयुक्तं प्रणवं तत्रवर्तते।११।

नाद विन्दुमयं पीठं ध्यायेत्तत्र मनोहरम्।
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्तते।१२।

ध्यायेत्तत्रगुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम्।
श्वेताम्वरधरं देवं शुक्लगन्धानुलेपनम्।१३।

शुक्लपुष्पमयं माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम्।
एवंविध गुरोर्ध्यानात् स्थूल ध्यानं प्रसिध्यति।१४।

भावार्थ- एक प्रकार का एक और स्थूल ध्यान है। ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार नामक सहस्र दल वाला महापद्म है, इसके मध्य में बारह दल का एक कमल है। यह शुभ्रवर्ण तथा परम तेज सम्पन्न है। इसके बारह दल में क्रमशः ह स क्ष म ल व र यूँ ह स ख फ्रें- ये बारह अक्षर लिखे हैं। उसकी कर्णिका में अ क थ इन तीन अक्षरों की तीन रेखाएं हैं। मध्य में ह ल क्ष इन त्रिकोणाकार अक्षरों मे मण्डल में 'ॐ' बना है। पुनः नादविन्दुमय एक पीठ विराजमान है। उस पीठ पर दो हंस खड़े हैं। वहीं पादुका भी है। इसी स्थल पर गुरुदेव विराजित हैं। उनकी दो भुजा हैं। शुक्ल वस्त्र पहने हैं। शुभ्र चन्दन चर्चित हैं। शुभ्र वर्ण की माला धारण किये हैं। उनके बाम भाग में रक्त वर्ण की शक्ति शोभा पा रही है। ऐसा ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है। 9 से 14।

ज्योतिर्मयध्यानम्

कथितं स्थूलध्यानं तु तेजोध्यानं श्रुणुष्वमे।
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्म प्रत्यक्षमेव च।१५।
मूलाधारे कुण्डलिनी भुजगाकाररूपिणी।
जीवात्मातिष्ठति तत्र प्रदीप कलिकाकृतिः।१६।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानात् परात्परम्।

भावार्थ- हे चण्ड! स्थूल ध्यान कहा गया; अब तेजोध्यान कहता हूं। इससे योग - सिद्धि तथा आत्म-प्रत्यक्ष होता है। मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति हैं इस स्थान में दीप कलिकाकार में जीव रहता है। यहाँ पर ज्योति रूप ब्रह्म का ध्यान ज्योतिर्ध्यान कहा जाता है।15,16।

भ्र ुवोर्मध्ये मनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम्।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेवहि।१७।

भावार्थ- भ्रूमध्य में और मन के ऊर्ध्व भाग में 'ॐ' कार मय और शिखामालायुक्त ज्योति है। उसका ध्यान ज्योतिर्ध्यान है। इसे ही ज्योतिर्ध्यान या तेजोध्यान कहते हैं।17।

तेजोध्यानं श्रुतं चण्ड सूक्ष्मं ध्यानं वदाम्यहम्।
वहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डलीजागृता भवेत्।४८।
आत्मनः सहयोगेन नेत्र रन्ध्रविनिर्गता।
विहरेत् राजमार्गे च चंचलत्वान्नदृश्यते।१९।

शाम्भवीमुद्रया योगी ध्यानयोगेनसिध्यति।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम्।२०।

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं विशिष्यते।२१।

इतिते कथितं चण्ड ध्यान योगं सुदुर्लभम्।
आत्मसाक्षाद् भवेद्यस्मात् तस्माद् ध्यानं विशिष्यते।२२।

भावार्थ- हे चण्ड, तेजोध्यान कहने के बाद सूक्ष्य ध्यान कहता हूं। सुनो, बड़े भाग्य से साधक की कुण्डली जाग्रत होती है। आत्मा के साथ मिलकर नेत्ररन्ध्र से निकलकर ऊर्ध्वभागस्थ राजमार्ग नामक स्थल में घूमती है। घूमते समय सूक्ष्मत्व चंचलत्व के कारण उसे देखना कठिन होता है। योगी शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी का ध्यान करे, इसे ही सूक्ष्म ध्यान कहते हैं। यह गोपनीय और देवताओं को भी दुर्लभ है। स्थूल से ज्योति ध्यान सौ गुना श्रेष्ठ है। ज्योतिध्यान से सूक्ष्मध्यान लाख गुना श्रेष्ठ है। हे चण्ड, यह दुर्लभ ध्यान-योग तुम्हें सुनाया, इससे आत्मासाक्षात्कार तथा ध्यानसिद्धि होती है।18 से 22।

卐 卐 卐

।।षष्ठोपदेशः समाप्तः।।

सप्तमोपदेशः

卐卐

समाधियोगः

घेरण्य उवाच

समाधिश्च परंयोगं बहुभाग्येन लभ्यते।
गुरोः कृपा प्रसादेन प्राप्यते गुरु भक्तितः।१।

विद्या प्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः।
दिने दिने यस्यभवेत् सयोगी सुशोमनाभ्यासमुपैत्तिसद्यः।२।

भावार्थ- हे चण्ड, समाधि सब से बड़ा योग है। बड़े भाग्योदय होने पर वह गुरु-भक्ति एवं उनकी कृपा से ही प्राप्त है। विद्या की प्रतीति, स्वगुरु की प्रतीति और आत्मा की प्रतीति एवं मन का प्रबोध जिसको दिन-दिन बढ़ता है- वही योगी समाधि-योग-साधन के अभ्यास का अधिकारी होता है।1,2।

घटाद्भिन्नमनः कृत्वा ऐक्यंकुर्यात्परात्मनि।
समाधिं तद्विजानीयाद् मुक्त संज्ञोदशादिभिः।३।

अहं ब्रह्म न चान्योस्मि ब्रह्मैवाहं नशोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान्।४।

भावार्थ- मन को शरीर से पृथ्क करके परमात्मा में लगावे, ऐसा करके योगी मुक्त हो जाता है। मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूं। मैं ब्रह्म ही हूँ, शोक युक्त नहीं हूं। मैं सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त स्वभाव वाला हूं। 3,4।

शाम्भव्य चैवखेचर्या भ्रामर्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।५।

पंचधाभक्तियोगेन मनोमूर्च्छाच षड्विधा।
षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।६।

भावार्थ- समाधि-योग छः प्रकार का है- ध्यानयोग-समाधि, नादयोग-समाधि रसानन्दयोग-समाधि, लयसिद्धि-योग-समाधि, भक्ति-योग-समाधि और राजयोग-समाधि। शाम्भवी मुद्रा से ध्यान योग की खेचरी से नादयोग की, भ्रामरी से रसानन्द की, योग-मुद्रा से लययोग, भक्ति से सिद्धि-योग, मनोमूर्च्छा से भक्ति योग-समाधि एवं कुम्भक से राजयोग समाधि होती है।5,6।

ध्यानयोगसमाधिः

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।
बिन्दुब्रह्म सकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्र नयोजयेत्।७।

खमध्ये कुरुचात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मनं खमयं दृष्ट्या न किंचिदपि वाध्यते।८।
सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थोभवेन्नरः।

भावार्थ- शाम्भवी के अनुष्ठान से पहले आत्म-प्रत्यक्ष करे, फिर विन्दुमय ब्रह्म का प्रत्यक्ष करता हुआ, विन्दु में मन को लगावे, शिर में स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश के मध्य में आत्मा को लावे, फिर उस आकाश को जीव में लय करें, जीव को परमात्मा में लय करें, इससे नित्यानन्द मुक्त हो जाए। इसे ही ध्यान-योग कहते हैं।7,8।

नादयोगसमाधिः

साधनात् खेचरीमुद्रा रसनोर्ध्वगतासदा।
तदासमाधिसिद्धिः स्याद् हित्वा साधारणक्रियाम्।९।

भावार्थ- खेचरी-मुद्रा का अनुष्ठान करके रसना को ऊपर रक्खे इससे साधारण क्रियाएँ छूटकर समाधि-सिद्धि होती है। इससे नादयोग समाधि सिद्धि होती है।9।

रसानन्दयोगसमाधिः

अनिलं मन्दवेगेन भ्रामरी कुम्भकं चरेत्।
मन्दं मन्दरेचयेद् वायुं भृङ्गनादं ततोभवेत्।१०।

अन्तःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनोनयेत्।
समाधिर्जायते तत्र आनन्दः सोहमित्युत।११।

भावार्थ- भ्रामरी करके धीरे-धीरे श्वास को निकाल दे, इस योग को करते समय देह के अन्दर भ्रमर समान गुंजार होता है। जहां यह नाद हो वहीं पर मन लगावे, इसे रसानन्द-योग-समाधि कहते हैं। इसके द्वारा 'सोऽहं' ज्ञान होता है और योगी सदैव आनन्द में रहता है।10,11।

लयसिद्धियोगसमाधिः

योनिमुद्रा समासाद्य स्वयं शक्तिमयोभवेत्।
सुश्रृंगाररसेनैव विहरेत् परमात्मनि।१२।

आनन्दमयः सम्भूय ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत्।
अहं ब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेनजायते।१३।

भावार्थ- योनि मुद्रा करता हुआ योगी अपने में शक्ति भावना, परमात्मा में पुरुष भावना करे। पुनश्चं मेरा तथा परमात्मा का शक्ति पुरुषमय-बिहार हो रहा है-ऐसी भावना करे। आनन्द मय एकता प्राप्त कर ब्रह्म में 'मैं अद्वैत ब्रह्म हूं' ऐसा चिन्तन करे, इससे समाधि होती है। इसे लयसिद्धि योग-समाधि कहते हैं। 12,13।

भक्तियोगसमाधिः

स्वकीय हृदये ध्यायेदिष्टदेव स्वरूपकम्।
चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लाद पूर्वकम्।१४।

आनन्दाश्र पुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिः सम्भवत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनी।१५।

भावार्थ- अपने हृदय से परमाह्लाद पूर्वक भक्तियोग से इष्ट देव के स्वरूप का चिन्तन करे, इससे आनन्दाश्रु बहने लगते हैं। शरीर पुलकित होता है। इससे मन अचेत और एकाग्र हो जाता है। ब्रह्म साक्षात्कार होता है। इसे भक्तियोग-समाधि कहते हैं। 14,15।

राजयोगसमाधिः

मनोमूर्च्छा समासाद्य मन आत्मनियोजयेत्।
परात्मनः समायोगात् समाधि समवाप्नुयात्।१६।

भावार्थ- मनोमूर्च्छा कुम्भक के अभ्यास से मन को ब्रह्म में एकाग्र करे। इस प्रकार परमात्मा के योग से राजयोग-समाधि होती है।।16।

समाधियोगमाहात्म्यम्

इतितेकथितंचण्ड समाधि मुक्ति लक्षणम्।
राजयोगः समाधिः स्यादेकात्मन्येव साधनम्।१७।
उन्मनी सहजावस्था सर्वेचैकार्थवाचकाः।

भावार्थ- हे चण्ड! इस प्रकार मैंने मुक्ति देने वाली समाधि कही। एकात्मा में साधन से राजयोग-समाधि होती हैं। उन्मनी सहजावस्था ये सब नाम समाधि के ही हैं।17।

जले विष्णुः स्थले विष्णु र्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुःसर्व विष्णुमयं जगत्।१८।

भूचराः खेचराश्चामी यावन्तो जीवजन्तवः।
वृक्षगुल्मलतावल्लीस्तृणाद्यवारि पर्वताः।१९।

सर्व ब्रह्ममयं पश्येत् सर्व पश्यति चात्मनि।
आत्मनघटस्थ चैतन्यद्वैतं शाश्वतं पदम्।
घटाद् विभिन्न तो ज्ञात्वा वीतरागो विवासनः।२०।

भावार्थ- जल में विष्णु, स्थल में विष्णु, पर्वत शिखर में विष्णु, ज्योति में विष्णु-यह सम्पूर्ण जगत विष्णुमय है। भूचर, खेचर आदि जीव जन्तु, वृक्ष, वेल, लता, तृण, पर्वत ये सब ब्रह्मरूप हैं। योगी सब को आत्मा में तथा सब में आत्मा को देखता है। शरीर में चैतन्य सनातन आत्मा है। शरीर से भिन्न आत्मा को जानकार वीतराग वासना रहित होता है।18 से 20।

एवं विधः समाधिः स्यात् सर्वसंकल्पवर्जितः।
स्वदेहे पुत्रदारादिबान्धवेषु धनादिषु।२१।

सर्वेषु निर्ममोभूत्वा समाधिसमवाप्नुयात्।
तत्त्वं लयामृतं गोप्यं शिवोक्तं विविधानि च।२२।

वाचां संक्षेपमादाय कथितं मुक्ति लक्षणम्।
इतिते कथितं चण्ड समाधिर्दुर्लभः परः।२३।
यज्ज्ञात्वान पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले।

भावार्थ- अपने देह में, पुत्र वान्धवादि धनादि में निर्ममत्व हो कर समाधि को प्राप्त करे। इस प्रकार सब संकल्पों से रहित समाधि होती है। लयामृत-यह तत्त्व शिव से कहा हुआ संक्षेप में मुक्ति का लक्षण कहा गया। हे चण्ड! यह दुर्लभ समाधि मैंने तुम्हें बतायी जिसे जानकर फिर पुनर्जन्म नहीं होता।21 से 23।

卐 卐 卐

श्री घेरण्ड-संहिता समाप्तः।।

क्रम.	पुस्तक का नाम		मूल्य
1.	श्री गुरुपूजन पद्धति	(संस्कृत)	10.00
2.	रेणुका तन्त्रम्	(संस्कृत)	15.00
3.	श्री विद्यारत्न सूत्रम्	(संस्कृत)	5.00
4.	माण्डूकोपनिषद्	(हिन्दी)	5.00
5.	तारा कर्पूर राज स्तोत्रम्	(हिन्दी)	5.00
6.	त्रिपुरा महिम्न स्तोत्रम्	(हिन्दी)	15.00
7.	पीताम्बरा अर्चन पद्धति	(संस्कृत)	10.00
8.	दर्शन शास्त्र संग्रह	(हिन्दी)	15.00
9.	अथर्ववेदिय ज्योतिष	(हिन्दी)	10.00
10.	योग विज्ञान I	(हिन्दी)	30.00
11.	योग विज्ञान II	(हिन्दी)	20.00
12.	लेख संग्रह	(हिन्दी)	30.00
13.	लेख संग्रह	(अंग्रेजी)	40.00
14.	ललिता सहस्त्रनाम (भास्करभाष्य)	(संस्कृत)	40.00
15.	*सिद्धान्त रहस्य (पंचस्थ)	(हिन्दी)	15.00
16.	सिद्धान्त रहस्य	(अंग्रेजी)	10.00
17.	सिद्धान्त रहस्य	(मराठी)	10.00
18.	बगलामुखी रहस्य	(संस्कृत)	60.00
19.	भैरव सर्वस्व	(संस्कृत)	75.00
20.	भैरव विज्ञान	(हिन्दी)	25.00
21.	नारदीय शिक्षा	(हिन्दी)	8.00
22.	*हनुमत् उपासना	(संस्कृत)	18.00
23.	*केपोनिषद्	(हिन्दी)	5.00
24.	*ईषावास्योपनिषद	(हिन्दी)	5.00

*उपलब्ध नहीं है।

क्रम.	पुस्तक का नाम		मूल्य
25.	कठोपनिषद्	(हिन्दी)	20.00
26.	मुण्डकोपनिषद्	(हिन्दी)	10.00
27.	प्रश्नोपनिषद्	(हिन्दी)	10.00
28.	प्रश्नोपनिषद्	(अंग्रेजी)	10.00
29.	प्रश्नोपनिषद्	(संस्कृत)	5.00
30.	वेदारन्त प्रबोध	(हिन्दी/संस्कृत)	15.00
31.	ईश्वर गीता	(हिन्दी)	20.00
32.	सिद्धान्त रहस्य	(संस्कृत)	10.00
33.	वैदिक उपदेश	(हिन्दी)	20.00
34.	वैदिक उपदेश	(अंग्रेजी)	25.00
35.	स्वरोदय विज्ञान	(हिन्दी)	15.00
36.	पुरश्चरण पद्धति	(हिन्दी)	10.00
37.	चिद्विलास	(हिन्दी/संस्कृत)	10.00
38.	*चिद्विलास	(अंग्रेजी सजिल्द)	10.00
39.	चिद्विलास	(अंग्रेजी अजिल्द)	10.00
40.	घेरंडसंहिता	(हिन्दी/संस्कृत)	20.00
41.	*धूमवती सपर्याणव	(संस्कृत)	20.00
42.	वातूलनाथ सूत्र	(हिन्दी/संस्कृत)	5.00
43.	शिव सूत्र भक्ति सूत्र	(संस्कृत)	10.00
44.	योग दर्शन	(अंग्रेजी)	10.00
45.	योग दर्शन	(संस्कृत)	5.00
46.	महात्रिपुरसुन्दरी पूजा	(हिन्दी/संस्कृत)	20.00
47.	सप्तविंशति रहस्य	(संस्कृत)	20.00
48.	काली कर्पूर स्तोत्रम	(हिन्दी/संस्कृत)	10.00

*उपलब्ध नहीं है।

क्रम.	पुस्तक का नाम		मूल्य
49.	देवी सहस्त्रनाभ संग्रह II	(संस्कृत)	15.00
50.	वरिवस्या रहस्य	(हिन्दी)	15.00
51.	गुरु तत्व एवं पादुका पंचक	(हिन्दी)	20.00
52.	सौन्दर्य लहरी स्तोत्र (ललिता)	(सं.)	5.00
53.	*महागणपति तर्पण	(संस्कृत)	5.00
54.	*गुरुनवरत्न माला	(संस्कृत)	5.00
55.	निगमागम समन्वय	(हिन्दी)	20.00
56.	*शाक्य सौरभ (ज्ञानखण्ड)I	(हिन्दी)	15.00
57.	*शाक्त सौरभ (ज्ञानखण्ड)II	(हिन्दी)	20.00
58.	मातृकाचक्रविवेक	(हिन्दी)	45.00
59.	कामकला विलास	(संस्कृत)	15.00
60.	*सौन्दर्स लहरी (लक्ष्मीधरी)	(संस्कृत)	25.00
61.	ज्योतिषतत्व विवेक	(हिन्दी)	120.00
62.	*स्वामी चरित्र चिंतामणि	(हिन्दी)	50.00
63.	*स्वामी कथासार	(हिन्दी)	60.00
64.	स्वामी स्मृति ग्रन्थ	(हिन्दी)	151.00
65.	तान्त्रिक पंञ्चांग	(संस्कृत)	15.00
66.	शरभ तंत्र	(संस्कृत)	13.00
67.	महाविद्या चतुष्टय	(संस्कृत)	20.00
68.	पञ्चस्तवी	(संस्कृत)	5.00
69.	तीर्थ भारतम्	(पद्य)	20.00
70.	सौन्दर्य लहरी (डिंडिम)	(संस्कृत)	18.00
71.	*दार्शनिक चिंतन और शाक्त सिद्धान्त	(हिन्दी)	20.00

*उपलब्ध नहीं है।

क्रम.	पुस्तक का नाम		मूल्य
72.	*दार्श. चंतन और शाक्त सिद्धान्त	(अंग्रेजी)	मुद्रणाधीन
73.	ललिता सहस्त्रनाभ स्तोत्र	(मूल)	11.00
74.	*पराप्रवेशिका	(हिन्दी)	2.00
75.	दुर्लभ स्तोत्र	(संस्कृत)	10.00
76.	पीताम्बरा चालीसा	(हिन्दी)	2.00
77.	परश्चरण	(पद्य)	5.00
78.	पञ्चोपनिषद्	(संस्कृत)	15.00
79.	लघुस्तव राज	(हिन्दी/संस्कृत)	15.00
80.	गुरु पादुका प्रसाद	(हिन्दी)	2.00
81.	गुरु महिमा स्तवन	(हिन्दी)	2.00
82.	*शाक्त तंत्र साधना	(हिन्दी)	50.00

*उपलब्ध नहीं है।

श्री 1008 श्री स्वामी जी कृत अन्य रचनायें

❖	Vaidik Upadesh (English)	25-00
❖	Chida Vilasa (English)	10/-Bound 10-00
1.	श्री बंगलामुखी रहस्य	60-00
2.	पञ्चोपनिषद् (प्रकाश भाष्य)	15.00
3.	प्रश्नोपनिषद् (प्रकाश भाष्य)	5.00
4.	सौन्दर्य लहरी (डिण्डिम भाष्य)	18.00
5.	शिवसूत्रं भक्ति सूत्रञ्च	5.00
6.	नारदीय शिक्षा (संस्कृत टीका)	8.00
7.	घेरण्ड संहिता (भाषानुवाद सहित)	20.00
9.	ईश्वर-गीता (भाषानुवाद सहित)	20.00
10.	वैदिक उपदेश (हिन्दी)	20.00
11.	पुरश्चरण पद्धति	10.00
12.	अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष (भाषानुवाद सहित)	10.00
13.	वेदान्त प्रबोध (सानुवाद)	15.00
15.	लेख-संग्रह (हिन्दी)	30.00
16.	सिद्धान्त-रहस्य (हिन्दी)	यंत्रस्थ 15.00
17.	त्रिपुरा-महिम्न स्तोत्र (भाषानुवाद)	15.00
18.	तान्त्रिक पञ्चाङ्ग	15.00
19.	पञ्चस्तवी	5.00
20.	महात्रिपुर सुन्दरी पूजा पद्धति	20.00
21.	श्री चिद्विलास (श्री विद्या रहस्य)	10.00
22.	श्री परश्चरण	5.00
23.	सप्तविंशति रहस्य	20.00
24.	स्वरोदयविज्ञान	यंत्रस्थ 20.00

श्री पीताम्बरा पीठ

दतिया (म.प्र.)